ॐ

श्री परमात्मने नमः

कविवर पण्डित भारामल्लजी कृत कवित्तबद्ध चरित्र के आधार पर

चारुदत्त चरित्र

—: लेखक :—

परमेष्ठीदास जैन न्यायतीर्थ

ललितपुर

—: सम्पादन :—

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियां, भीलवाड़ा (राज०)

—: आद्य-प्रकाशक :—

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,

'जैनविजय' प्रिंटिंग प्रेस-खपाटिया, चकला-सूरत

: प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत 2082 | **वीर संवत 2552** | **ई. सन 2025**

—: प्रकाशन :—

पौष कृष्ण अष्टमी,
कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य कुन्दकुन्ददेव का
आचार्य पदारोहण दिवस के अवसर पर
दिनांक 12 दिसम्बर 2025

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) – 364250 फोन : 02846–244334
2. श्री कुन्दकुन्द–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई–400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर
अलीगढ़।

प्रकाशकीय

वीतराग परमात्मा की वाणी का प्रवाह चार अनुयोग में निबद्ध है— प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग। इसमें मोक्षमार्ग साधक अथवा मुक्ति प्राप्त धर्मात्माओं के जीवनचरित्र का वर्णन करनेवाला अनुयोग प्रथमानुयोग कहलाता है। जिसमें संसार की विचित्रता, पुण्य-पाप का फल और महन्त पुरुषों की प्रवृत्ति के निरूपण द्वारा जीवों को धर्ममार्ग में लगाया जाता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के चरित्र नायक चारुदत्त का जीवन इसका प्रबल उदाहरण है। बालपन में विद्याभ्यास में रंगा चित्त, युवावस्था में कुसंगति में पड़कर वेश्या सेवन में सम्पूर्ण वैभव लुटा देने के प्रसंग और व्यापार के उतार-चढ़ाव के अनेक प्रसंग और इन सभी प्रसंगों में अन्तत: निर्लिप्त चैतन्यस्वभाव का आराधन करके धर्ममार्ग में गमन प्रेरणास्पद प्रसंग है। चारुदत्त चरित्र अनेक जैन लेखकों की कलम से लिखा गया है। इसका वर्णन हरिवंश पुराण जैसे महाग्रन्थ में भी उपलब्ध होता है। इसी क्रम में कविवर भारामल्लजी द्वारा विक्रम संवत् १८१३ में लिखे गये चारुदत्त चरित्र के आधार पर पण्डित परमेष्ठीदास न्यायतीर्थ के द्वारा प्रस्तुत इस ग्रन्थ का प्रकाशन करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है। प्रस्तुत संकलन में समादरणीय पण्डितजी ने उपलब्ध अन्य ग्रन्थों में समागत कुछ नामभेद और कथाप्रसंगों के अन्तर को फुटनोट में दर्शाया है। प्रस्तुत ग्रन्थ मूलचन्द किसनदास कापड़िया द्वारा ईस्वी सन् १९३५ में सूरत से प्रकाशित किया गया है। जिसे भाषा आदि के समुचित सम्पादन के साथ यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। आशा है पाठकगण इस चरित्रग्रन्थ को अपने अध्ययन की विषयवस्तु बनायेंगे।

हमारे प्रेरणास्त्रोत समयसार युगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी एवं तद्भक्त पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के अन्तरस्थल में व्याप्त ज्ञानी-धर्मात्माओं और प्रेरक पुराण पुरुषों की भक्ति इस कथा ग्रन्थ के प्रकाशन में कारणभूत हुई है। तदर्थ उभयज्ञानी धर्मात्माओं के चरणयुगल में सविनय वन्दन समर्पित करते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ का सम्पादन कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है।

सभी पाठकगण समुचित लाभ लेते हुए आत्मसाधना के पावन पथ पर गमनशील होंगे, यही भावना है।

ट्रस्टीगण,
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
विले पार्ला, मुम्बई

प्रस्तावना

अनेक कथा-ग्रन्थों में से 'चारुदत्त चरित्र' लिखने की मेरी इच्छा इसलिए हुई कि इसमें भयंकर पतन से आदर्श उत्थान की चर्चा है, पतितोद्धारकता का वर्णन है और सामाजिक एवं धार्मिक उदारता का खासा चित्र है। इस ग्रन्थ के पढ़ने से ज्ञात होगा कि कहाँ तो चारुदत्त का बारह वर्ष तक वेश्या-गृह में निवास और कहाँ उनका मुनि होकर सर्वार्थसिद्धि में गमन। यह जैनधर्म की उदारता का ज्वलन्त प्रमाण है। इसी प्रकार वेश्या वसन्ततिलका के साथ विवाह करके चारुदत्त ने उसे अपने समान बना लिया और उसने श्राविका के व्रत ग्रहण करके अपना आत्मकल्याण किया। यह जैन समाज की उदारता का स्पष्ट प्रमाण है। इसी प्रकार इस चरित्र में अनेक ज्ञातव्य किन्तु वर्तमान युग के लिये आश्चर्यकारी बातें प्रतीत होंगी।

मूल में श्री सोमकीर्ति कृत चारुदत्त चरित्र संस्कृत भाषा में है। वह अभी तक कहीं प्रगट नहीं हुआ है। श्री पण्डित नाथूरामजी प्रेमी से ज्ञात हुआ है कि 'श्री सोमकीर्ति संभवत: काष्ठासंघी थे। उनका बनाया हुआ प्रद्युम्न चरित्र भी है।' जिसका श्री प्रेमीजी ने अनुवाद किया है। उन्हीं श्री सोमकीर्ति कृत संस्कृत चारुदत्त चरित्र के आधार पर सिंघई भागमल्ल कवि ने संवत् १८१३ में चौपाई दोहा में चारुदत्त चरित्र लिखा था। यह कवि खरौवा (गोलालारे) दिगम्बर जैन जाति के थे। इनका निवासस्थान फरुखाबाद और फिर भिण्ड था। इनकी बनाई हुई शीलकथा, दर्शनकथा, दानकथा, निशि भोजनकथा आदि कई कथायें जैन समाज में सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। कवि भारामल्लजी कृत कथायें समाज पर धार्मिक श्रद्धा उत्पन्न करनेवाली हैं और उनकी रचना बहुत ही सरल है। किन्तु साहित्यिक दृष्टि से उनका कोई विशेष महत्व नहीं है। यदि इनकी रचनाओं को मात्र तुकबन्दी ही कहा जाये तो अतिशयोक्ति न होगी।

उन्हीं के चारुदत्तचरित्र से यह पुस्तक लिखी गयी है। बीच-बीच में जहाँ अन्य कथाग्रन्थों से इसमें विरोध प्रतीत हुआ, वह टिप्पणी के रूप में नीचे लिख दिया गया है। इसे लिखते समय हरिवंशपुराण और आराधना कथाकोश से विशेष सहायता ली गयी है। जहाँ इन तीनों में विरोध मालूम हुआ, वहाँ मुझे हरिवंशपुराण का कथन विशेष प्रामाणिक प्रतीत हुआ है। कथा ग्रन्थों में ऐसे विरोध प्रायः कई जगह पाये जाते हैं। वहाँ बुद्धि से विचार करके प्रामाणिक कर्ता का कथन प्रमाण मानना चाहिए। क्योंकि कथा की सभी बातें साक्षात् सर्वज्ञ भगवान द्वारा कही हुई नहीं होती हैं। इसी बात को आचार्यकल्प पण्डितप्रवर टोडरमलजी ने इस प्रकार लिखा है —

''प्रथमानुयोग विषै जे मूल कथा हैं, ते तौ जैसी हैं तैसी ही निरूपित हैं। अर तिन विषैं प्रसंग पाय व्याख्यान होहै। सो कोई तो जैसाका तैसा होहै, कोई ग्रंथकर्ताका विचारके अनुसार होय, परन्तु प्रयोजन अन्यथा न होहै। बहुरि प्रसंगरूप कथा भी ग्रन्थकर्ता अपना विचार अनुसार कहै। जैसे धर्मपरीक्षा विषै मूर्खनिकी कथा लिखी, सो एही कथा मनोवेग कही थी, ऐसा नियम नाहीं। परन्तु मूर्खपनाकौं ही पोषती कोई वार्ता कही, ऐसा अभिप्राय पोषै है।'' – मोक्षमार्गप्रकाशक

इसी को लक्ष्य में रखकर यदि विचार किया जाये तो तमाम विरोध-परिहार हो जाता है। पाठकों से निवेदन है कि वे इस चरित्र को पढ़ते समय नीचे दिए हुए नोट अवश्य पढ़ते जावें। इसके अतिरिक्त बीच-बीच में प्रसंगोचित श्लोक भी दे दिये गये हैं। जिनका सम्बन्ध प्रायः इस चरित्र से है।

चारुदत्त की कथा बहुत ही व्यापक है। दिगम्बर, श्वेताम्बर और हिन्दू शास्त्रों में भी यह कथा कुछ परिवर्तन के साथ पायी जाती है। इतना ही नहीं, किन्तु साहित्यिक दृष्टि से भी यह चरित्र अनेक कवियों ने लिखा है। इस विषय में महाकवि शूद्रक का 'मृच्छकटिक' नाटक संस्कृत में

उच्चकोटि का ग्रन्थ है। उसके कुछ श्लोक इस चरित्र में कई जगह दिये गये हैं। इसी प्रकार महाकवि श्री 'भास' कृत चारुदत्तचरित्र भी उच्चकोटि का ग्रन्थ है। इन दोनों संस्कृत चरित्रों के पढ़ने से अपूर्व आनन्द आता है। यह कथा इतनी सुन्दर है कि आज भी लोग इसे बड़े ही चाव से पढ़ते हैं। यहाँ तक कि 'वसन्तसेना' नाम का सिनेमा (फिल्म) भी निकल चुका है। श्री जिनसेनाचार्यकृत हरिवंशपुराण के सर्ग २१ में यह चरित्र बहुत ही अच्छे रूप में लिखा गया है।

प्राय: सभी कथा ग्रन्थों में वेश्यापुत्री को 'वसन्तसेना' के नाम से लिखा गया है। तथा चारुदत्त और वसन्तसेना की जोड़ी ही विख्यात है। किन्तु कवि श्री भारामल्लजी ने न जाने क्यों वसन्तसेना को 'वसन्ततिलका' के नाम से लिखा है ? मैंने भी इस चरित्र में वसन्ततिलका ही नाम रहने दिया है। इस चरित्र के पृष्ठ .... के नीचे जो नोट दिया है, वह भूल से लिखा गया है। पाठकगण उसे सुधार लें।

इस चरित्र को पढ़ने से ज्ञात होगा कि भोले भाले धर्मात्मा चारुदत्त को बलात् वेश्या के साथ फँसाया गया था और फिर वह इतना आसक्त हुआ कि अपना सर्वस्व गँवा बैठा। फिर भी जब वह प्रतिबुद्ध हुआ, तब उसने थोड़े ही समय में अपने पापों को धो डाला और वसन्तसेना ने भी अवसर पाकर प्रायश्चित्त से आत्मशुद्धि कर ली। महाकवि शूद्रक ने तो अपने मृच्छकटिक में इन दोनों के विषय में यहाँ तक लिखा है कि इस नगरी में तिलकस्वरूप दो ही पूज्य हैं। एक तो आर्या वसन्तसेना और दूसरा धर्मनिधि चारुदत्त। यथा —

दो ज्जब पूअणीआ इह णअरीए तिलअभूदाअ।
अज्जा वसंतसेणा धम्मणिही चारुदत्तो अ॥

इसी प्रकार जैन शास्त्रों में भी इनका कम मान नहीं है। हमें इस चरित्र से यह सीखना चाहिए कि कुसंगति नाश का कारण है। जबकि

धर्मयुक्त पवित्र जीवन जगतपूज्य होता है। साथ ही चारुदत्त का उद्योगी जीवन, व्यापारिक साहस और आपत्तियों में सहनशीलता भी हमें बहुत कुछ सिखा सकती है। प्रत्येक कथा में पतन और उत्थान दोनों बताये जाते हैं। उनमें से हमें उन्नतिकारक एवं कल्याणकर कार्यों का अनुकरण करना चाहिए।

चंदावाड़ी–सूरत
ता. ३०–११–३६

निवेदक
परमेष्ठीदास जैन न्यायतीर्थ

ॐ

॥ नमः श्री भद्रबाहुमुनये॥

चारुदत्तचरित्र

मंगलाचरण

सर्वेषां वेघसामाद्यमांदिमं परमेष्ठिनम्।
देवाधिदेवं सर्वज्ञं श्रीवीरं प्रणिदध्महे॥

मैं उन महावीरस्वामी के चरणों में नमस्कार करता हूँ जो सभी दुःख समूह को हरनेवाले हैं, तथा जो जगत के तरणतारण हैं और महासुख के कारण हैं। उन्हीं भगवान महावीरस्वामी ने जगत में धर्म का प्रकाश किया और संसार के भ्रम को दूर किया, जिससे अपूर्व सुख की प्राप्ति हुई। उन्हीं के निमित्त से अनेक जीव धर्म के मर्म को पहिचानकर और कर्म को नाश करके मोक्ष गये हैं। इस प्रकार श्री महावीरस्वामी को नमस्कार करके चौबीस तीर्थंकरों को भी नमस्कार करता हूँ और चारुदत्तचरित्र का प्रारम्भ करता हूँ।

मध्यलोक के असंख्यात दीप समुद्रों के बीच में एक लाख योजन लम्बा-चौड़ा जम्बूद्वीप है। उसको चारों ओर से वेढ़े हुए लवण समुद्र है। जम्बूद्वीप में भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक्, हैरण्यवत, ऐरावत, नाम के सात क्षेत्र हैं। उनमें से दक्षिण की ओर भरतक्षेत्र सुशोभित होता है। इस भरतक्षेत्र में भी छह खण्ड हैं और उनमें से आर्यखण्ड प्रधान एवं महिमामय है। इसी

आर्यखण्ड में जब चौथा काल होता है, तब त्रेसठ शलाका पुरुष होते हैं। इस आर्यखण्ड में अनेक मनोहर देश हैं। उन्हीं में से अंग देश में चम्पापुरी नगरी है। उसकी शोभा स्वर्गपुरी के समान है।

★ ★ ★

कथा का आरम्भ

जिस समय की यह कथा है, उस समय चम्पानगरी की शोभा एवं महिमा अवर्णनीय थी। नगरी की शोभा गढ़, खाई, कोट और विशाल दरवाजों से और भी बढ़ गयी थी। वहाँ के वन उपवन, तालाब, आदि देखकर मन हर्षोन्मत्त हो जाता था। वहाँ के सभी लोग जैनधर्म के धारण करनेवाले थे और प्रतिदिन देवपूजा, गुरुभक्ति, स्वाध्याय, संयम, तप और दानादि करते थे। सभी लोग गुणियों से प्रेम करते थे। सारा नगर धन-धान्यादि से पूर्ण था और वहाँ कोई दीन-दुःखी नहीं था। घर-घर में आनन्द मंगल होता था और सभी भोग-विलास आदि से सुखी थे। प्रत्येक घर में शास्त्रों का पठन-पाठन होता था, कोई सामुद्रिक शास्त्र के वेत्ता थे तो कोई अपूर्व वैय्याकरण कोई विविध विद्याओं के ज्ञाता थे तो कोई संगीत कला के जानकार। कहीं गायन मण्डलियाँ बैठती थीं तो कहीं तमाशे और कीर्तन होते थे। इस प्रकार सर्वत्र आनन्द व्याप्त रहा था।

वहाँ के बाजारों की शोभा अपूर्व एवं अकथनीय थी। कोई

हीरा-मोती और मणियों की दुकानें थीं तो कोई रत्नजड़ित आभूषणों की। कोई मेवा मिष्टान्न की दुकानें थीं तो कोई आनन्दकारी विविध वस्तुओं की।

वहाँ के गगनचुम्बी विशाल भवन तोरण आदि से बहुत ही सुशोभित होते थे। वे भवन सातखण्डवाले एवं कलामय थे। उनकी शोभा देखकर यही मालूम होता था कि यह स्वर्गपुरी का टुकड़ा ही है। उन महलों के प्रवेशद्वारों की चित्रकला देखते ही बनती थी। वहाँ सदा आनन्द उत्सव होते रहते थे।

कहीं-कहीं विशाल जिनभवन शोभित हो रहे थे। उन पर स्वर्णकलश शोभा देते थे। और शुभ्र ध्वजायें आकाश में उड़ रही थीं। उन मन्दिरों के भीतर रत्नमयी जिनप्रतिमायें विराजमान थीं। दर्शन करनेवालों को ऐसा प्रतीत होता था जैसे कि किसी इन्द्र का विमान ही हो। वहाँ सभी लोग जैनधर्म में सदा रत रहते थे और प्रतिदिन दान-पूजादि में अपने द्रव्य का सदुपयोग करते थे।

चारों ओर सुन्दर तालाब थे और उनमें मनोहर कमल खिल रहे थे। वर्षाऋतु में अच्छी वर्षा होती थी और सर्वत्र फल-फूल लगते थे। तात्पर्य यह है कि वहाँ के निवासियों को भोगभूमि जैसा सुख था। उस चम्पापुरी के राजा विमलवाहन थे।* वह नीतिनिपुण एवं प्रजा के लिये सुखकारी थे। उनका कोई शत्रु नहीं था। उनकी विभूति का वर्णन नहीं हो सकता। उस राज्य में सभी आनन्द विनोद से रहते थे।

---

* आराधना कथाकोश में राजा का नाम 'शूरसेन' लिखा है। यथा—'चम्पाख्ये नगरे राजा शूरसेनो महानभूत्॥' कथा ३५॥

राजा विमलवाहन की रानी विमलमती समस्त गुणों की खान थी। वह चन्द्रवदना रूपकला युक्त थी। और उस मृगनयनी का सुन्दर शरीर स्वर्ण के समान दैदीप्यमान था। राजा विमलवाहन की वह रानी विमलमती ऐसी मालूम होती थी, जैसे श्री रामचन्द्रजी की पत्नी सीता। उसके समान रूपवती अन्य स्त्री नहीं थी। रूप के साथ उसमें शीलादि गुण भी थे, जिससे वह महाराजा विमलवाहन को सदा अनुरंजित करती रहती थी। उसके हरिसिंह, गोमुख, वराहक, परतप और मरुभूत नाम के पाँच पुत्र थे। यह पाँचों पुत्र माता-पिता को सदा आनन्दित करते थे। पाँचों पुत्रों ने शस्त्रविद्या और शास्त्रविद्या तथा क्षत्रियोचित सभी गुण प्राप्त कर लिये थे। इस प्रकार राजा सब प्रकार के सुखों में मग्न होकर कालयापन करता था।

उसी चम्पानगरी में एक राजमान्य वणिक भानुदत्त निवास करता था। वह हीरा, माणिक, मोती आदि का व्यापार करता था। राजसभा और राजभवन में उसका अच्छा मान था। उसकी पत्नी का नाम देवल था।* वह सदा पति की आज्ञा में चलती थी और भानुदत्त को बहुत प्यारी थी। उसका सुन्दर रूप देखकर तो ऐसा मालूम होता था कि जैसे ब्रह्मा ने रति-रम्भा का नमूना ही बनाया हो। वह चन्द्रमुखी देवल अपने पति के साथ दिन दूना प्रेम बढ़ाती रहती थी।

---

* हरिवंशपुराण में भानुदत्त की पत्नी का नाम 'सुभद्रा' लिखा है। यथा — 'भानुदत्त इति ख्यातः सुभद्रा तस्य भामिनी।' सर्ग २१-५॥ आराधना कथाकोश में भी 'सुभद्रा' लिखा है। यथा — 'भानुनामाभवच्छ्रेष्ठी सुभद्रा श्रेष्ठिनी प्रिया।' कथा ३५-२॥ श्वेताम्बर जैन कथा रत्नकोश में भी 'सुभद्रा' नाम लिखा है।

उसके कपोलमण्डल की शोभा चन्द्र और सूर्य की किरणों के समान थी, नाक तोते के समान सुन्दर थी, वचन कोयल के समान मधुर थे, बाल भोरों के समान काले थे, मुख कमल जैसा सुन्दर था, आँखें मृग के समान मनोहर थी, उठे हुए स्तनद्वय स्वर्णकलश जैसे मालूम होते थे, गहरी नाभि और पतली कमर बहुत सुन्दर मालूम होती थी। शरीर की काति स्वर्ण समान मनोहर थी। तात्पर्य यह है कि वह ऐसी सुन्दर मालूम होती थी जैसे उसने रति की सुन्दरता छीनकर अपने में धारण कर ली हो। सुन्दरता के साथ ही देवल स्त्रियोचित सर्व गुण सम्पन्न थी। वह शीलवती एवं पतिभक्ता थी, साथ ही उस पर पति का भी अपूर्व प्रेम था। उन दोनों का स्नेह एवं अनुरूपता देखकर लोग आश्चर्यपूर्वक कहा करते थे कि दैव न यह कैसा अच्छा संयोग मिलाया है।

★ ★ ★

पुत्र की इच्छा

किन्तु जिस प्रकार फूल में काँटा भी होता है, उसी प्रकार सम्पूर्ण सांसारिक सुखयुक्त यह दम्पति पुत्र के न होने से दुःखी थे। सेठानी देवल को सन्तान की तीव्र इच्छा थी, इसलिए वह पुत्र प्राप्ति के लिये यक्ष-यक्षिणी तथा अन्य कुदेवों की पूजा किया करती थी। इस प्रकार कुदेवों की पूजा से भी जब सफलता नहीं हुई, तब वह और भी दुःखी हो गयी। सच तो यह है कि कुदेवों की पूजा-स्तुति से भी क्या कहीं कार्य की सिद्धि होती है?

एक दिन सुमति नाम के मुनिराज उसके मकान पर पधारे और उसे यक्ष-यक्षिणी की पूजा करते देखा।* तब मुनि महाराज ने देवल को सम्बोधित करके कहा कि हे पुत्री! तू कुदेवों को क्यों पूजती है? तब दोनों हाथ जोड़ मस्तक नमाकर देवल बोली कि भगवन्! क्या करूँ? पुत्र के न होने से मैं बहुत दुःखी हूँ। पुत्र की लालसा से मैं कुदेवों की पूजा करती हूँ। पुत्र प्राप्ति के लिये मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ। कहिये स्वामी! मेरे कब और कैसे पुत्र होगा या मैं यों ही अपुत्रवती रहकर अपना जीवन पूरा कर दूँगी?

---

* आराधना कथाकोश और हरिवंश पुराण में लिखा है कि सेठ और सेठानी ने जिनमन्दिर में मुनिराज के दर्शन करके वहीं पर पूछा था कि हमारे पुत्रोत्पत्ति होगी या नहीं? यथा :- एकदा श्री जिनेन्द्राणां मन्दिरे शर्ममन्दिरे। नत्वा चारणयोगीन्द्रं सा सुभद्रा जगाद च॥ कथा 35-4॥ अर्हदायतने पूजां कुर्वाणावन्यदा च तौ। चारणश्रमणं दृष्ट्वा पुत्रोत्पत्तिमपृच्छतां॥ हरि० 21-9॥ इसमें चारणऋद्धिधारी मुनि से पूजा करते समय मिलना बताया है।

तब मुनिराज बोले कि पुत्री! तू शोक का परित्याग कर, चिन्ताओं को छोड़ दे और धैर्य धारण कर विवेक से काम ले। क्या कभी कुदेवों की पूजा से पुत्र की प्राप्ति होती है? कोई भी देव ऐसा नहीं है, जिसकी पूजा मानता करने से पुत्र की प्राप्ति होती हो। यह तो कर्मोदय के आधीन है। यह जानकर तुझे प्रसन्नता होगी कि अब कुछ समय बाद तेरे एक पुत्ररत्न होगा। तू कुदेवों की पूजा मानता छोड़ दे। जो स्त्री-पुरुष इस प्रकार अभीष्ट सिद्धि की अभिलाषा से कुदेवों की पूजा करते हैं, वे अन्त में दु:ख पाते हैं।

बेटी! तुझे यह खबर नहीं है कि मिथ्यादेवों की पूजा से सम्यक्त्व का नाश होता है, धर्मकर्म सब मिट जाता है और अभीष्ट की सिद्धि भी नहीं होती। तू विश्वास रख कि अपने पुण्य-पाप के सिवाय और कोई भी देव किसी का कुछ सुधार या बिगाड़ नहीं सकता। जो लोग सम्यक्त्वहीन होकर मिथ्यात्व का सेवन करते हैं, वे स्वप्न में भी सुख प्राप्त नहीं करते और अन्त में नरक की यातनायें सहते हैं। जो अविवेकी मनुष्य सच्चे वीतरागी देव को छोड़कर कुदेवों के सामने मस्तक रगड़ा करते हैं, वे दुर्गति में जाते हैं। इसलिए तू मन-वचन-काय से श्री जिनेन्द्र भगवान की सेवा कर और जैनधर्म पर पक्का श्रद्धान कर, जो भव-भव में सुखदाता है। तेरे पुण्य का उदय हुआ है, अब तुझे पुत्र की प्राप्ति अवश्य होगी।

मुनिराज के यह वचन सुनकर देवल बहुत प्रसन्न हुई। उसे मुनिराज के वचनों पर पूर्ण विश्वास हो गया और जैनधर्म पर

अटल श्रद्धा जम गयी। मुनिराज को उसने भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और मुनि महाराज वन की ओर विहार कर गये।

देवल ने मुनिराज के वचनों की विश्वासपूर्वक गाँठ बाँध ली और यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि पूर्व का सूर्य पश्चिम में भले ही उगे परन्तु मुनिराज के वचन असत्य नहीं हो सकते। इस प्रकार विश्वास जमाकर वह नित्य प्रति जिन पूजन करने लगी, व्रत उपवास करने लगी और दानादि देने लगी।

★ ★ ★

चारुदत्त का जन्म

इस प्रकार देवल के दिन आनन्द से व्यतीत होने लगे और कुछ समय बाद गर्भ धारण हुआ। गर्भ स्थिति जानकर देवल के आनन्द का पार नहीं रहा। धीरे-धीरे नव मास पूर्ण होने पर सम्पूर्ण लक्षण-युक्त पुत्र की प्राप्ति हुई।

सेठ और सेठानी के हर्ष का पार नहीं था। याचकों को दान दिया गया, मंगलाचार होने लगे, चारों तरफ से बधाईयाँ आने लगीं, और सभी प्रकार के आनन्द उत्सव होने लगे। धीरे-धीरे बालक जब बारह दिन का हुआ, तब श्रुत के ज्ञाता ज्योतिषी विद्वान बुलाये गये। उन्होंने उस पुत्र का नाम 'चारुदत्त' रखा। धीरे-धीरे चारुदत्त दूज के चन्द्र समान बढ़ने लगा और देखते ही देखते आनन्द विनोद में सात वर्ष पूर्ण हो गये। तब माता-पिता ने जिनमन्दिर में महोत्सव किया, याचकों को दान दिया और बालक

को गुरु के पास पढ़ने को भेजा।[1] वहाँ वह विनयपूर्वक एकचित्त हो विद्याभ्यास करने लगा।

कुछ ही समय में उसने अनेक शास्त्र पढ़ लिये और सब विद्याओं में निपुण हो गया। अलंकार, छन्द, व्याकरण, सामुद्रिक, तर्क, न्याय, नीति, ज्योतिष, गणित, संगीत, वैद्यक और शस्त्र आदि विद्याओं में निपुणता प्राप्त कर ली। तथा जैन सिद्धान्त में पारंगत हो गया। इस प्रकार सर्व विद्या सम्पन्न होकर चारुदत्त राजपुत्रों के साथ क्रीड़ा किया करता था। राजपुत्रों का और चारुदत्त का परस्पर खूब ही स्नेह हो गया था। वह सदा जैनधर्म पर श्रद्धा रखकर पूजा, जप, दान और तीर्थवन्दनादि किया करता था। इस प्रकार आनन्द विनोद के साथ समय व्यतीत होने लगा। इसके बाद एक विचित्र घटना हुई, जो इस प्रकार है —

★ ★ ★

चारुदत्त का वन विहार

चम्पापुरी नगरी के बाहर बहुत ऊँचा एवं शोभायुक्त एक पर्वत है।[2] उसका नाम मंदारगिरि है। उस पर जिनमन्दिर हैं। उसी पर्वत से श्री जमधर मुनिराज आठ कर्मों को नाशकर मोक्ष

1. हरिवंशपुराण में लिखा है कि चारुदत्त को बाल्यकाल में ही पंचाणुव्रत भी धारण कराये गये थे। यथा :- 'कृताणुव्रतदीक्षश्च ग्राहित: सकला: कला: '॥सर्ग 21-12॥

2. हरिवंशपुराण में यात्रा का जिक्र नहीं है। किन्तु इतना मात्र लिखा है कि चारुदत्त रत्नमालिनी नदी के तट पर घूमने गया और वहाँ वन में एक विद्याधर को वृक्ष पर लटका देखा।

गये हैं, इसलिए वह पवित्र भूमि पूजनीय है। वहाँ पर लोग यात्रा के निमित्त से जाते थे। वहाँ पर प्रतिवर्ष मार्गशीर्ष माह के शुक्ल पक्ष में बड़ा भारी मेला लगता था। एकबार मेला का समय आया, तब नगर में आनन्द छा गया और सब लोग पूजादि का द्रव्य लेकर अपनी-अपनी सवारी पर सवार हो पर्वत की ओर चले। इस यात्रा में राजा से लेकर रंक तक सभी लोग गये। चारुदत्त भी उस मेला में गया था और वहाँ की यात्रा करके आनन्द प्राप्त किया।

चारुदत्त यात्रा करके अपने मित्र के साथ नीचे उतरा और दोनों नदी के किनारे घूमने के लिये निकल गये। थोड़ी दूर जाने पर एक बाग दिखाई दिया। उसे देखकर चारुदत्त बहुत प्रसन्न हुआ। बाग के सभी वृक्ष फल फूलों से सुशोभित हो रहे थे। उनकी शीतल छाया सुखकारी थी। कहीं नारियल के वृक्ष थे तो कहीं नारंगी लटक रही थीं, कहीं अमृतफल थे तो कहीं दाखें, बादामें, बेर, नींबू और बिजौरा दिखाई देते थे। कहीं सुपारी, खजूर आदि लगे थे तो कहीं कदम, अन्नास, आड़ू, आम, कटहल, बड़हर, अचार, केंथ, सदाफल, अतूत और अनार लग रहे थे। कहीं चम्पा, केतकी रायचमेली, गुलाब और गुलहर के फूल लगे थे तो कहीं कनेर फूल रही थी। इसी तरह और भी अनेक प्रकार के फलफूल उस बाग में लगे थे, जिनकी गणना नहीं की जा सकती।

उसी के निकट एक सुन्दर सरोवर था, जिसकी शोभा का वर्णन करना कठिन है। वह तालाब जल से परिपूर्ण था। वहाँ कोयल मधुर शब्दों में कुहू-कुहू करती थी। चकई, चकवा और चकोर पक्षी भी बीच-बीच में मधुर बोली बोलते थे। इस प्रकार

वह बाग बहुत ही सुन्दर एवं मनमोहक हो रहा था। वहाँ पर श्रेष्ठिपुत्र चारुदत्त क्रीड़ा कर रहा था कि उसकी दृष्टि एक वृक्ष पर पड़ी। उस वृक्ष की एक शाखा में एक मनुष्य कीलित था। उसके शरीर में कीलें ठुकने से वह मूर्छित हो गया था। उसे अपने तन-मन की कुछ खबर नहीं थी। चारुदत्त यह दशा देखकर द्रवित हो गया और शीघ्र ही वह उस वृक्ष की शाखा पर चढ़ गया और एक विमान देखकर चारुदत्त ने अनुमान किया कि यह कोई विद्याधर होना चाहिए, इसे मार डालने के लिये ही किसी ने इसे इस प्रकार कीलित किया है। अच्छा हुआ जो इसके प्राण अभी तक अटके हुए हैं। इस प्रकार विचार कर चारुदत्त ने उसे छुड़ाने का उपाय सोचा। विमान में देखने से उसे तीन गुटिकायें (औषधियाँ) मिलीं। उन गुटिकाओं के नाम कीलोत्पाटनी, संजीवनी और व्रणसरोहनी था।

उन गुटिकाओं को चारुदत्त ने हाथ में लिया और जिनेन्द्र भगवान का स्मरण करके विद्याधर के शरीर पर कीलोत्पाटनी गुटिका लगाई। गुटिका के स्पर्श होते ही विद्याधर छूट गया। इसके बाद चारुदत्त ने उसे संजीवनी गुटिका लगाई, जिससे विद्याधर की मूर्छा दूर होकर चैतन्य आ गया। उसके बाद व्रणसरोहनी गुटिका लगाते ही शरीर के सब घाव मिट गये।* तब विद्याधर सचेत

* हरिवंशपुराण में गुटिकाओं के नाम और उनके गुणों में कुछ अन्तर है। वहाँ इस प्रकार का वर्णन किया गया है कि - वहाँ पर चालन, उत्कीलन और व्रणसंरोहणी नाम की तीन दिव्य औषधियाँ ढाल के नीचे दबी हुई रखी थीं। इशारा कर विद्याधर ने उन्हें बताया। तब चालन औषधि के प्रभाव से चारुदत्त ने विद्याधर को चलाया, उत्कीलन से छुटाया और व्रणसंरोहण से घाव अच्छे किये।

होकर उठा और चारुदत्त को देखकर भक्तिपूर्वक नमस्कार किया।

★ ★ ★

विद्याधर की इच्छा

चारुदत्त ने विद्याधर से पूछा कि आप कौन हैं? आपके माता-पिता का क्या नाम है? आपका निवासस्थान कहाँ है? आप यहाँ किसलिए आये थे और आपको इस कष्ट में किसने डाला है? तब विद्याधर बोला कि – विजयार्द्धपर्वत की दक्षिण श्रेणी में एक शिवमन्दिर नाम का नगर है। वह इतना सुन्दर है कि स्वर्गपुरी जैसा मालूम होता है। उसका राजा महेन्द्रदत्त* है। उन्हीं का मैं पुत्र हूँ। मेरा नाम अमितवेग है, मैं अपने स्थान पर आनन्दपूर्वक निवास करता था। मेरा एक मित्र धूमशिखा विद्याधर है। वह भी विजयार्द्ध पर ही रहता है। हम दोनों का परस्पर अच्छा प्रेम था। प्रतिदिन हम आनन्द विनोद किया करते थे। एक दिन हम दोनों ने क्रीड़ा करने के लिये बाहर जाने का विचार किया और ध्वजापताका से युक्त सुन्दर विमान सजाया। उसमें हम दोनों ने बैठकर बड़े ही आनन्द विनोद के साथ आकाश में प्रयाण किया। विमान आकाश में उड़ रहा था और हम वहाँ से नगर की सुन्दरता देख रहे थे।

आखिरकार, चलते-चलते हमारा विमान हैमगिरि पर्वत पर

* हरिवंशपुराण में – राजा का नाम महेन्द्रविक्रम, पुत्र का नाम अमितगति और मित्रों का नाम धूमसिंह और गौरमुंड लिखा है।

पहुँचा। वहाँ ऐसे मनोहर स्थान हैं कि जिनकी शोभा का कथन नहीं हो सकता। हम दोनों मित्रों ने वहाँ पर खूब आनन्द विनोद किया। वहाँ पर हमें एक क्षत्रिय जातिय हरिय [1] नामक मनुष्य मिला। उसकी एक सुन्दर कन्या थी जो कि देवकन्या से भी अधिक रूपवती थी। उसका नाम सुरकुमारिका था। हम समझते हैं कि महिला मण्डल में उसके समान सुन्दर कोई अन्य स्त्री नहीं हो सकती। उसका शरीर कनकवर्ण, मनोहर था। चन्द्रमा के समान मुख और मृग के समान सुन्दर आँखें थीं। हंस के समान चाल तथा कोयल के समान मधुर वाणी थी। केहरि के समान कटि थी और तोते जैसी सुन्दर नाक थी। तात्पर्य यह है कि वह सर्वांग सुन्दर थी। उसे देखकर मुझे बहुत ही आनन्द हुआ और मैं उसकी सुन्दर मूर्ति पर मोहित हो गया। कामदेव के बाणों से मेरा शरीर आकुल-व्याकुल हो उठा और यही विचार हुआ कि इस सुकुमारिका के साथ विवाह कर लूँ। तब मैंने उसके पिता से विनयपूर्वक उस कुमारिका की याचना की। उसका भी मेरे ऊपर अच्छा स्नेह था, इसलिए उसने मुझे तिलक कर दिया और बड़े ही ठाट-वाट से अपनी कन्या के साथ विवाह कर दिया। [2] मैं उसे लिवाकर सानन्द अपने घर आ गया। वहाँ पहुँचकर हम

---

1. हरिवंशपुराण में – हरीय की जगह 'हिरण्यरोम' नाम का तपस्वी और उसकी कन्या का नाम 'सुकुमारिका' लिखा है।

2. हरिवंशपुराण में यों लिखा है कि मैं उस कुमारिका पर मुग्ध होकर अपने घर लौट आया, फिर भी वह मेरे मन में बसी रही। जब मेरे पिताजी को यह बात मालूम हुई, तब उनने तापसी से मेरे लिये कन्या को माँगा। उसने स्वीकार करके मेरे साथ विवाह कर दिया।

नित नये आनन्द-विनोद करने लगे और बड़े ही प्रेमपूर्वक भोगोपभोग करते हुए काल यापन करने लगे।

हम दोनों को इस प्रकार आनन्द विनोद करते देखकर हमारा मित्र धूमशिखा विद्याधर जला करता था। वह हमारी पत्नी के रूप पर मुग्ध था, इसलिए उसे प्राप्त करने के लिये उस दुष्ट को दुर्बुद्धि सूझी।

उसने एक कपटजाल रचा और सुरकुमारिका को हरने का संकल्प किया। मैं उसके कपटजाल को नहीं समझ सका कि उसके मन में क्या दुष्टता भरी हुई है। होनहार बलवान होती है। तदनुसार दैव ने कुछ ऐसी ही रचना रची। एक दिन धूमशिखा मेरे मकान पर आया। उसे देखकर मुझे बहुत आनन्द हुआ। बात ही बात में वनक्रीड़ा करने को बाहर जाने का निश्चय किया। तब मैंने एक सुन्दर विमान सजाया और अपनी पत्नी को तथा मित्र को साथ लेकर आकाश में उड़ गया। उड़ते-उड़ते हम इस बाग में आये और अनेक प्रकार की क्रीड़ा की। मुझे प्रमाद अवस्था में पाकर उस दुष्ट धूमशिखा ने मुझे यहाँ पर इस प्रकार कीलित कर दिया।

उस पापी को न तो कुछ दया आई और न यह विचार उत्पन्न हुआ कि ऐसा करने से इसके प्राण बचेंगे या नहीं। यह बात भी दूर रही, किन्तु वह दुष्ट मेरी यह दशा करके उसी समय मेरी स्त्री

---

* हरिवंशपुराण में तीनों का विमान में जाने का कोई जिक्र नहीं है। किन्तु उसमें यह लिखा है कि मैं इस नदी के पुलिन में रतिक्रीड़ा कर रहा था कि अचानक ही दुष्ट धूमसिंह भी आ पहुँचा और मुझे कीलित कर मेरी प्यारी पत्नी सुकुमारिका को लेकर चलता बना।

को लेकर भाग गया। उस समय मेरी तो ऐसी हालत थी, इसलिए मैं कुछ भी नहीं कर सका। और मैंने घोर दुःख सहन किये। परन्तु क्या किया जाये? यहाँ मेरा कोई शरण नहीं था। किन्तु अन्त में मेरे सद्भाग्य से आप यहाँ आ निकले और आपके प्रसाद से मेरे प्राण बच गये। सचमुच ही मैंने आपकी कृपा से पुनर्जन्म प्राप्त किया है और अपूर्व सुख प्राप्त किया है। वास्तव में पूर्वकृत कर्म की रेखा को कोई नहीं मिटा सकता है। हे धीर पुरुष! तुम दयालु हो और परोपकार के लिये सदा तत्पर रहनेवाले हो। इतना कहकर वह विद्याधर हाथ जोड़कर नतमस्तक हो बोला कि हे नाथ! अब मुझे घर जाने की आज्ञा दीजिए। मैं जाकर उस दुष्ट से अपनी पत्नी को शीघ्र ही छुड़ाऊँगा और उसे दण्डित करके देश से बाहर निकाल दूँगा।

ऐसा कहकर उस अमितवेग विद्याधर ने एक बार फिर से चारुदत्त को नमस्कार किया और बड़ी ही उमंग से विमान में बैठकर अपने नगर की ओर रवाना हो गया। वहाँ पहुँचकर उसने धूमशिखा को कैद कर लिया और अपनी स्त्री को छुड़ा लिया। इसके बाद वह विद्याधर उसी समय चारुदत्त के पास आया और हाथ जोड़कर बोला कि हे स्वामी! मेरी प्रार्थना सुनिये। मैं अपनी पत्नी को छुड़ाकर इस दुष्ट को आपके पास लाया हूँ। इस दुष्ट ने मुझे बहुत दुःखी किया है। अब आप जो चाहें, सो इसे दण्ड दीजिये। आपके प्रसाद से मेरे प्राण बचे हैं, इसलिए मैं तो आपका सेवक हूँ, आपका आज्ञाकारी हूँ और आप मेरे मालिक हैं, प्राणदाता हैं।

यह सुनकर चारुदत्त बोले कि — हे धीरवीर! ऐसी बातें मत करो। हमारा-तुम्हारा स्वामी सेवक का व्यवहार नहीं है, किन्तु तुम मेरे भाई हो, यही मन में निश्चय समझो। यदि आप मानें तो हमारा तो यह विचार है कि इस दुष्ट को अब छोड़ दिया जाये। इतना सुनते ही विद्याधर आनन्दित हुआ और उसे मुक्त कर दिया। इसके बाद अमितवेग विद्याधर, चारुदत्त की आज्ञा पालन करके अपनी पत्नी सहित नगर को चला गया।

चारुदत्त अपने द्वारा यह शुभकार्य हुआ देखकर बहुत आनन्दित हुए और फिर उस बाग से मित्रसहित अपने स्थान को चले गये। वहाँ जाकर अपने महलों में बड़े ही आनन्दपूर्वक कालयापन करने लगे।

★ ★ ★

चारुदत्त का विवाह

उसी नगर में एक सिद्धार्थ* नाम का सेठ था। वह विपुल सम्पत्तिशाली था। वह देवल सेठानी का भाई और चारुदत्त का माता था। उसकी स्त्री का नाम सुमित्रा था। वह जैसी रूपवती थी, वैसी गुण एवं चतुर्य युक्त भी थी। उसके एक पुत्री थी, जिसका नाम 'मित्रवती' था। वह सामुद्रिक शास्त्र के अनुकूल सभी शुभ गुणों से युक्त थी। रूप, लावण्य और गुणयुक्त मित्रवती ऐसी मालूम होती थी, जैसे स्वर्ग की किन्नरी ही हो। जब यौवनवती

* हरिवंशपुराण में 'सर्वार्थ' नाम है।

हुई, तब उसके माता-पिता को विवाह की आतुरता हुई। माता-पिता का कर्तव्य है कि वह पुत्री के अनुकूल वर की शोध करें, अच्छा कुल और अच्छा घर देखें और ऐसे ही अनुरूप वर के साथ विवाह करें। तद्नुसार सिद्धार्थ सेठ ने विचार किया कि अपनी पुत्र मित्रवती चारुदत्त (अपने भानजे) को देनी चाहिए।* उसका अच्छा कुल है, शुभ लक्षण हैं और अपनी बहन का पुत्र (भानजा) है। इस प्रकार विचार करके चारुदत्त को टीका कर दिया और दोनों ओर से आनन्द मनाया गया। उसी समय ज्योतिर्विदों ने लग्न की घड़ी भी शोधी और विवाह का शुभ दिन निश्चित किया गया।

उसी समय से खूब आनन्दोत्सव मनाया जाने लगा। कहीं कामिनियाँ मंगल गान गाती थीं, तो कहीं स्त्रियाँ चौक पूरती थीं। कहीं पर विवाह सम्बन्धी व्यवहार-नेंग दस्तूर हो रहे थे तो कहीं विविध बाजे बज रहे थे। उस समय भेरी, झांझें, झाल, कंसाल, ढोल, मृदंग और बीन बाजों से सारा नगर शब्दायमान हो रहा था। एक ओर याचकों को दान दिया जाता था तो दूसरी ओर सज्जनों का सन्मान किया जाता था। इस प्रकार धामधूम के साथ चारुदत्त ने करकंकण और मौर-मुकुट आदि धारण करके बारात सहित विवाह के लिये प्रयाण किया। सिद्धार्थ सेठ के दरवाजे पर जब बारात पहुँची, तब खूब आदर-सत्कार और अगवानी की गयी। वहाँ पर बहुत ही सुन्दर मण्डप और वेदी की रचना की

---

* पहले भानेज के साथ अपनी लड़की का विवाह करने का बहुतायत से रिवाज था। यह प्रथा दक्षिण प्रान्त में अभी भी है।

गयी थी जो अत्यन्त मनोहर थी। उस समय कामिनियाँ रस भरे कमनीय गीत गा रही थीं और सुन्दरियाँ वर-कन्या का शृंगार कर रही थीं। वहीं पर विद्वान पण्डित विवाह विधि के मन्त्रोच्चार कर रहे थे। इस प्रकार शास्त्रीय विधि से विवाह आनन्दपूर्वक सम्पन्न हुआ।

इस प्रकार वर को कन्या का दान दिया गया। और स्वर्णाभरण तथा वस्त्रादि से सन्मानित किया गया। इसके बाद विदा होकर चारुदत्त अपने मकान पर आये, तब उनकी माता बहुत ही आनन्दित हुई और बधाई देकर खूब आनन्दोत्सव किया। सब कुटुम्बी और सम्बन्धीजन इस सुयोग्य सम्बन्ध को देखकर प्रसन्न हुए।

★ ★ ★

चारुदत्त की विरक्ति

शास्त्रव्यसनिनो मेऽभून्नात्मस्त्रीविषयेऽपि धीः।
शास्त्रव्यसनमन्येषां व्यसनानां हि बाधकम्॥

-हरिवंशपुराण

होनहार बलवान होती है। इतना उत्तम सम्बन्ध मिलने पर भी चारुदत्त को अपनी नवपरिणीता पत्नी पर स्नेह उत्पन्न नहीं हुआ। उसने आते ही उसका त्याग कर दिया! न उसकी वह खबर लेता था और न उसके पास ही कभी जाता था। वह बेचारी इस अकारण परित्याग से दु:खी रहती थी। उसके पास मात्र एक-दो सखियाँ ही रहती थीं, बाकी वह सूने एकान्त स्थान में

अपने दिन पूरे किया करती थी। वह न किसी से कुछ कहती थी, न सुनती थी, किन्तु चुपचाप विलाप किया करती थी और अपने पूर्वोपार्जित कर्म को ही दोष दिया करती थी। अपने पति के वियोग से दु:खी होकर उसने सब शृंगार और ताम्बूलादि का भी त्याग कर दिया था। बेचारी लम्बी सांसें लेकर मस्तक धुना करती थी और कहती थी कि हे विधाता! तूने यह क्या किया? यों कहकर दिन-रात आँखों से आँसू बहाया करती थी और दु:ख-शोक में अपना काल यापन किया करती थी।

उधर चारुदत्त बड़े ही आनन्द प्रमोद से विद्याध्ययन कर रहे थे। उन्हें काव्य, पुराण, छन्द, व्याकरण और अलंकारादि शास्त्रों के पढ़ने का काफी शौक था, इसलिए वे इसी में मस्त रहते थे। वे न तो अपनी पत्नी की खबर लेते थे और न उन्हें कामवासना का ही विचार था।

एक बार दैवयोग से चारुदत्त की सास सुमित्रा अनायास ही चारुदत्त के मकान पर आयी और अपनी पुत्री के स्थान पर गयी। पुत्री ने माता को देखकर स्नेह व्यक्त किया और आदरपूर्वक उच्च स्थान देकर कुशल समाचार पूछा। मगर मित्रवती की दीन-हीन एवं दु:खी अवस्था देखकर माता सुमित्रा अवाक् रह गयी और कुछ भी न बोल सकी! किन्तु चिन्ता और विषादयुक्त होकर मित्रवती की ओर देखने लगी।

वह देखती है कि हमारी पुत्री अत्यन्त क्षीण शरीर हो गयी है। शरीर पर मैले कुचैले वस्त्र पहिने है। मुखचन्द्र मैला और दु:खी दिखाई देता है। वह ऐसा लगता है जैसे चन्द्रमा काले

बादलों से ढँक गया हो। शरीर पर द्वादश प्रकार के आभूषण नहीं हैं। सोलह शृंगार और ताम्बूलादि का भी त्याग कर दिया है। यह सब देखकर अपनी पुत्री से सुमित्रा ने कहा कि बेटी! यह तुझे क्या हो गया है? तूने ऐसा वेश क्यों बनाया है? क्या तेरे ऊपर पति का प्रेम नहीं है? या कोई दूसरी चिन्ता लगी है? तेरा यह मैला शरीर और मैले वस्त्र देखकर मुझे भारी दु:ख हो रहा है। बेटी! सच-सच बात कह दे, क्या कारण है? मुझसे कोई बात मत छुपा।

माता की बातें सुनकर मित्रवती ने संकोच से मुख नीचा कर लिया और जमीन कुरेदने लगी। वह कुछ कहना चाहती थी, किन्तु कह नहीं सकती थी। कहने के लिये बात ओठों तक आ जाती थी, परन्तु मुँह नहीं खुलता था। तब सुमित्रा ने कहा कि पुत्री! अपने सुख-दु:ख की समस्त बातें मुझसे कहकर मेरे हृदय को शान्त कर। तू जानती है कि मुझे तेरे सुख में सुख और दु:ख में दु:ख है। तू नि:संकोच होकर कह दे कि तुझे ऐसा क्या दु:ख है कि जिससे तेरी ऐसी हालत हो गयी है।

इस प्रकार माता का अत्यन्त आग्रह देखकर मित्रवती आँखें नीची करके बोली कि जिस दिन तुमने मेरा विवाह किया और मैं जब से यहाँ आई हूँ, तब से मेरे पति ने न तो मेरी सुध ली है और न मेरे साथ कोई बातचीत ही की है। इतना ही नहीं, किन्तु वह मेरे पास तक नहीं आते हैं। वे मुझे कभी याद भी नहीं करते और मैं इस मकान में अकेली पड़ी-पड़ी रोया करती हूँ। उन्हें तो मात्र दिन-रात पढ़ना-लिखना ही सूझता है, गृहस्थाश्रम या आनन्द-

विनोद का तो उन्हें कोई विचार ही नहीं आता। वे तो अपना विरक्त जीवन-सा बिता रहे हैं। उन्हें यह खबर ही नहीं है कि पत्नी के प्रति पति का क्या कर्तव्य है। बस, मुझे यही दुःख सालता है, कारण कि स्त्रियों को पति-वियोग जैसा दुःख दूसरा नहीं है। यही कारण है कि मैं सब सुध-बुध भूलकर इस प्रकार दुःखी हो रही हूँ।

यह सब हाल सुनकर माता सुमित्रा ने मित्रवती से कहा कि बेटी! तू इस प्रकार आकुल-व्याकुल मत हो, विधि का विधान कोई नहीं मिटा सकता। जो होना होता है, वह होकर ही रहता है। कुलवधुओं को तो कुल की रीति पर ही चलना चाहिए। जो नीच हैं, वे नीच विचार करती हैं। इसलिए तू शान्त चित्त से जिनेन्द्र भगवान के चरणों का स्मरण कर और उन्हीं के नाम की माला जपा कर। इस प्रकार अनेक तरह से पुत्री को समझा-बुझाकर और अपने मन में अत्यन्त दुःखी होकर सुमित्रा वहाँ से उठी तथा मन में खूब क्रोध करती हुई मित्रवती की सास के पास गयी। सुमित्रा को आई हुई देखकर चारुदत्त की माता ने यथोचित आदर-सत्कार किया और बैठने को उच्चासन दिया।

बैठते ही कुशल समाचार पूछने की बात तो दूर रही। सुमित्रा कहने लगी कि सेठानीजी! तुम्हार पुत्र पढ़ा-लिखा तो है, किन्तु उसे व्यावहारिक ज्ञान तनिक भी नहीं है। उसे न तो गृहस्थाश्रम का ही ज्ञान है और न वह यह जानता है कि पति का पत्नी के प्रति क्या कर्तव्य है। वह पढ़ा-लिखा होकर भी अज्ञानी है! वह आजतक अपनी पत्नी के पास कभी नहीं गया है। तुम्हें तो यह

पहले से ही ज्ञात था कि चारुदत्त की रुचि पढ़ने-लिखने में ही है और वह कुछ नहीं जानता, तो फिर उसका विवाह ही क्या झख मारने को किया था? इस प्रकार क्रोधावेश में जो जी में आया, सो कहा।

देवल ने यह सब कटुवचन चुपचाप सुन लिये और फिर बहुत नम्रता से प्रार्थना की तथा अपनी लघुता बताकर विविध वचनों से उसे शान्त किया। उसके बाद सुमित्रा को आदरपूर्वक उसके घर पहुँचा दिया।

तदनन्तर चारुदत्त की माता बहुत दु:खी हुई। उसे सुमित्रा का एक-एक वचन कांटे की तरह सालने लगा। उसने विचार किया कि अब कोई ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे चारुदत्त सांसारिक बातों को भी समझने लगे। बहुत कुछ सोच-विचार के बाद उसने चारुदत्त के काका रुद्रदत्त को अपने मकान पर बुलाया और उससे कहा कि आप कुछ चारुदत्त को समझाइये, उसे संसार की ओर झुकाइये, भोगविलास का भान कराइये और ऐसा प्रयत्न करिये कि जिससे वह अपने गृही कर्तव्य को समझने लगे। मुझे और कोई चिन्ता नहीं है। चाहे जितना धन खर्च हो जावे, किन्तु इस कार्य की सिद्धि होना चाहिए।*

* इसके बाद हरिवंशपुराण में इस प्रकार कथन है—कदाचित् वेश्या वसन्तसेना का किसी नृत्यमंडल में नृत्य हुआ। काका रुद्रदत्त के साथ मैं (चारुदत्त) भी वहाँ गया। मण्डप में साहित्य आदि कलाओं में पूर्ण निष्णात अनेक मनुष्य बैठे थे। मैं भी उनके मध्य में जाकर बैठ गया। वसन्तसेना उस समय सूची नाटक (सुईयों के अग्रभाग पर नाचना) प्रारम्भ करना चाहती थी, उसके पहले ही उसने बिना खिले हुए जाति पुष्पों को बिखेर दिया। और वे तत्काल ही गायन के प्रभाव से खिल

भावज के इस प्रकार वचन सुनकर रुद्रदत्त ने अपने मन में विचार किया कि इसी नगर में वसन्तमाला* नाम की एक वेश्या है, उसकी पुत्री वसन्ततिलका बहुत ही रूपवती और गुणवती है। वह इतनी चतुर है कि अपने मन्त्र-तन्त्र और चेष्टाओं आदि से चारुदत्त को क्षणभर में ही वश में कर लेगी। इसलिए उसके पास जाकर सार हाल सुनाना चाहिए और उसे खूब द्रव्य देकर इस कार्य के लिये तैयार करना चाहिए। कारण कि —

यस्यार्थास्तस्य सा कान्ता, धनहार्यो ह्यसौ जनः।

-मृच्छकटिकम्।

तात्पर्य यह है कि जिसके पास धन होता है, उन्हीं की वेश्या पत्नी बन जाती है।

गये। यह देख मण्डप में बैठे हुए लोग उसकी प्रशंसा करने लगे। मुझे इस बात का पूर्ण ज्ञान था कि पुष्पों के खिलने से कौनसा राग होता है, इसलिए मैंने शीघ्र ही उसे मालाकार राग का इशारा कर दिया। वेश्या ने अंगुष्ठ का अभिनय किया, लोगों ने फिर उसकी प्रशंसा की और मैंने नखमंडल को साफ करनेवाले नापित राग का इशारा किया। जब वह गौ और मक्षिका की कुक्षिका का अभिनय करने लगी तो और लोग तो पहले ही की भाँति वेश्या की प्रशंसा करने लगे, किन्तु मैंने गोपाल राग का इशारा कर दिया। वेश्या वसन्तसेना हाव-भाव कलाओं में पूर्ण पण्डिता थी, इसलिए उसने जब मेरा यह चातुर्य देखा तो वह बड़ी प्रसन्न हुई और अंगुली की आवाज कर मेरी प्रशंसा करने लगी। तथा अनुरागवश समस्त लोगों को छोड़ मेरे सामने आकर अति मनोहर नाच नाचने लगी। नृत्य समाप्त कर वेश्या वसन्तसेना अपने घर चली गयी, परन्तु मेरे उस चातुर्य से उसके ऊपर कामदेव ने अपना पूरा अधिकार जमा लिया। इसलिए वह घर जाते ही अपनी माँ से बोली कि माँ! इस जन्म में सिवाय चारुदत्त के मेरी दूसरे के साथ संभोग न करने की प्रतिज्ञा है। कलिंग सेना ने मेरे काका रुद्रदत्त को समझाकर मुझे अपने घर बुलवाया और वसन्तसेना के साथ मेरा पाणिग्रहण करा दिया।

* हरिवंशपुराण में 'कलिंगसेना' वेश्या और उसकी पुत्री 'वसन्तसेना' के नाम से कही गयी है।

इस प्रकार विचार करके रुद्रदत्त वेश्या के पास गया और उससे कहा कि मैं तेरे पास चारुदत्त को लाऊँगा, उसे तू किसी भी उपाय से अपने वश में करने का प्रयत्न करना। वह भोला लड़का काम कला को बिल्कुल नहीं जानता है, इसलिए तू उसे सब सिखा देना। ऐसा कहकर वह अपने घर पर चला गया।

★ ★ ★

वेश्यागमन

एता हसन्ति न रुदन्ति च वित्तहेतो–
विंश्वासयन्ति पुरुषं न तु विश्वसन्ति।
तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन,
वेश्याः श्मशानसुमना इव वर्जनीयाः ॥

– मृच्छकटिकम्

एक दिन रुद्रदत्त ने चारुदत्त को बुलाया और नगर में घुमाने के लिये ले गया। घूमते–घूमते वे दोनों वेश्याओं की गली में पहुँचे। तब चारुदत्त ने कहा कि इधर जाना या घूमना ठीक नहीं है। वेश्याओं के घर जाना या उधर घूमना तो कामीजनों का काम है, मैं अब आगे नहीं जाना चाहता। ऐसा कहकर चारुदत्त वापिस अपने मकान को लौट आया।

इस कार्य में अपनी सफलता न देखकर रुद्रदत्त ने महावतों को बुलाया और उन्हें कुछ द्रव्य देकर कहा कि हम चारुदत्त को लेकर वेश्या के दरवाजे पर जाते हैं, इतने में तुम दोनों ओर से

हाथियां को लाकर भिड़ा देना और खूब चिल्ला-चिल्लाकर कहना कि हाथी मतवाले हैं, खूनी हैं, दौड़ो-दौड़ो बचो-बचो इत्यादि। इस प्रकार समझाकर रुद्रदत्त चारुदत्त को साथ में लेकर फिर नगर घुमाने को ले चले। चलते-चलते वे दोनों वेश्यागृह के पास जा पहुँचे। इतने में दोनों ओर से दो हाथी दौड़ते हुए आये। महावत चिल्ला रहे थे कि भागो-भागो हाथी मस्त और खूनी हैं, यह हमारे हाथ में नहीं हैं, इनने कई आदमियों को घायल कर डाला है। ओ आगे जानेवालो! दौड़ो-दौड़ो अपने प्राण बचाओ!

चारुदत्त को उस समय भागने का कोई मार्ग दिखाई नहीं दिया। मात्र प्राण रक्षा के लिये सामने वेश्या का घर ही दिखाई देता था। उधर रुद्रदत्त ने भी उसी में घुसने को कहा। और दोनों वेश्या के घर में घुस गये।*

मकान में जाकर उन्हें कुछ शान्ति मिली और वे उसकी शोभा देखने लगे। वहाँ बड़े-बड़े विशाल कमरे थे, चारों ओर मनोहर तोरण बँधे थे, रत्नजड़ित दरवाजे शोभायमान हो रहे थे, उनकी ज्योति से सारा मकान जगमगा रहा था। वहाँ अनेक प्रकार के रंग-बिरंगे खम्भे लगे हुए थे। आँगन की शोभा तो देखते ही बनती थी। वहाँ की चित्रकला अनायास मन मोहित कर लेती थी। कहीं चीते का चित्र था तो कहीं मयूर, कोयल दिखाई देती थी। कहीं पर चौरासी आसनों के चित्र बने थे तो कहीं रागरंग दर्शक चित्राम शोभा दे रहे थे। कहीं कोमल बिछौना

* इस प्रकार का कोई कथन हरिवंशपुराण में नहीं है। वहाँ तो नृत्य के समय प्रेम होना बताया है, जो विशेष संगत प्रतीत होता है।

बिछे थे तो कहीं चन्दोवा और पर्दा टंगे हुए थे। तात्पर्य यह है कि उस मकान की शोभा देखकर लोग यों ही मन्त्र-मुग्ध हो जाते थे। वह गणिकामन्दिर नगर में अद्वितीय ही था। ऐसा मकान नगर भर में और किसी का नहीं था।

वे दोनों शोभा देखते हुए आगे बढ़ें और वेश्या के पास जा पहुँचे। वेश्या वसन्तमाला ने उनका अच्छा आदर किया और थोड़ी बातचीत के उपरान्त वह चौपड़ उठा लाई। तथा रुद्रदत्त के साथ खेलने लगी। उस खेल में रुद्रदत्त की कई बार बुरी तरह हार हुई, यह चारुदत्त से नहीं देखा गया। काका रुद्रदत्त का बारबार हारते रहना चारुदत्त को बहुत खटकने लगा। थोड़ी देर बाद चारुदत्त ने रुद्रदत्त से कहा कि यदि आप मुझे खेलने दें तो निश्चय से आपकी ही जीत हो। यह सुनकर बसन्तमाला ने कहा कि यदि आप खेलना ही चाहते हैं तो हमारी सुन्दरी पुत्री वसन्ततिलका के साथ खेलो। मेरे साथ क्या खेलोगे? मैं तो वृद्धा हूँ और तुम हो सुन्दर गुणनिधान एवं यौवनवन्त सुकुमार! तुम्हारी और वसन्ततिलका की जोड़ी खूब जँचेगी! जिस प्रकार तुम खेलने में चतुर हो उसी, प्रकार हमारी कुमारिका वसन्ततिलका भी प्रवीण है।

इतना कहकर वसन्तमाला ने वसन्ततिलका को बुलाया। उसे देखते ही चारुदत्त के मन में एक अपूर्व हिलोर उठी और वह उसे क्षण भर देखता ही रह गया। वह उसे देवांगना से भी अधिक सुन्दरी प्रतीत हो रही थी। वसन्ततिलका के सुन्दर श्याम केश सुगन्धित तैल से मन मुग्ध कर रहे थे। उसके सुन्दर शरीर

की शोभा वर्णन करना बहुत कठिन है। उसकी आँखें फूले हुए कमल जैसी सुन्दर थीं और खंजन पक्षी तथा मछलियों को भी लज्जित करनेवाली थीं। उसकी भौहें टेढ़े धनुष के समान मालूम पड़ती थीं और नाक तोते जैसी सुन्दर थी। वह ऐसी मालूम होती थीं जैसे काम का गढ़ ही रचा गया हो।

उसका मुख, चन्द्रमा जैसा सुन्दर और चमकते हुए दाँत बिजली जैसे मालूम होते थे। लाल ओष्ठ तो ऐसे सुन्दर लगते थे जैसे वे काम की बराबरी कर रहे हों और उसके उठे हुए कुच काम के निवास करने के लिये मन्दिर जैसे मालूम होते थे। उसकी अत्यन्त पतली कमर और सुन्दर जंघायें कामक्रीड़ा का स्थल मालूम होती थीं। उसके कोमल और लाल पैर मनमोहक थे और उसकी मन्दगति मराल जैसी मालूम होती थी। उसकी भुजायें कोमल थीं और शरीर कृष था। तथा मोतियों से भरी हुई माँग बहुत सुन्दर मालूम होती थी। इतना ही नहीं किन्तु उसका शरीर कसूमी वस्त्री पहनने से अत्यन्त दैदीप्यमान हो रहा था। उसने सोलह प्रकार के श्रृंगार किये थे और बारह प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित थी। इस प्रकार जब वह सुसज्जित होकर हँसती हुई मीठे वचन बोलती थी, तब ऐसा मालूम होता था जैसे कोई कोयल ही बोल रही हो।

वह रात–दिन आनन्द विलास में रहा करती थी और अनेक प्रकार के रागरंग में मस्त रहती थी। उस सुन्दरी के साथ जब चारुदत्त की आँखें मिलीं, तब चारुदत्त विह्वल हो गया।

★ ★ ★

वसन्ततिलका से प्रेम

स्त्रियो हि नाम खल्वेता निसर्गादेव पण्डिताः।
पुरुषाणां तु पाण्डित्यं शास्त्रैरेवोपदिश्यते॥

– मृच्छकटिकम्

बसन्ततिलका विचारने लगी कि यह हमारे पुण्य ही का उदय समझना चाहिए कि जो हमारे घर पर कुँवर पधारे हैं। चारुदत्त ने भी उस पर मुग्ध होकर कुल द्रव्य न्यौछावर कर दिया। वसन्ततिलका ने भी अवसर देखकर चौपड़ खेलना प्रारम्भ की। एक-दो बाजी हो पायी थी कि चारुदत्त को प्यास लगी और उसने बसन्ततिलका से पानी माँगा। वेश्या ने भी मोहनचूर्ण डालकर श्रेष्ठिपुत्र चारुदत्त को पानी पिला दिया। उसे पीते ही वह विह्वल हो गया। इतना ही नहीं किन्तु वह कामबाण से पीड़ित होकर मोह के द्वारा विकल हो उठा। वेश्या ने भी उसे अपने वश में कर लिया और वह वेश्या के साथ रहने लगा।*

सच बात तो यह है कि जो होनहार होती है, वह होकर ही रहती है और विधि का विधान कोई नहीं बदल सकता। चारुदत्त उस समय से इस प्रकार वेश्यासक्त हो गया जैसे पतंगे दीपक के पास जाकर अपना शरीर जलाया करते हैं। वह वेश्या के घर इस प्रकार लीन होकर रहने लगा कि उसे किसी प्रकार की सुध-बुध भी न रही। एक दिन चारुदत्त ने बसन्ततिलका से कहा कि मेरी

* आराधना कथाकोश में लिखा है कि चारुदत्त कुसंगति के कारण मांसादि का भी सेवन करने लगा था। यथा :- ततोऽसौ चारुदत्तश्च कुसंगात्तप्रदोषत:। मांसादिकेऽपि संसक्त: कुसंग: पापकारणम्। – कथा ३९, श्लोक १३

सम्पत्ति असीम है, आभूषण इत्यादिक की कोई गिनती ही नहीं है। तुझे जितना जो कुछ मँगवाना हो सो मेरे यहाँ से मँगवा ले और खूब द्रव्य खर्चो, खाओ और मौज करो। यह सुनकर वेश्या बहुत प्रसन्न हुई और वह चारुदत्त के साथ आनन्द विनोद करने लगी। चारुदत्त वेश्या के वश में इस प्रकार हो गया जैसे जादूगर के वश में विषधर सर्प हो जाता है। इस प्रकार चारुदत्त वेश्या के साथ महलों में आनन्दपूर्व काल यापन करने लगा।

इधर तो चारुदत्त बसन्ततिलका के साथ मौज में पड़ गया और उधर रुद्रदत्त उसे वैसी ही स्थिति में छोड़कर अपने स्थान को चला गया। चारुदत्त के पिता ने रुद्रदत्त को अकेला आया देखकर कहा कि भाई! तुम मेरे पुत्र को कहाँ छोड़ आये हो? तब रुद्रदत्त ने कहा कि चारुदत्त वेश्या के यहाँ है। इसके अतिरिक्त आद्योपान्त सब बातें कह सुनाई। यह सुनकर चारुदत्त के पिता को क्रोध आ गया और वे बोले कि अरे दुष्ट! तूने यह क्या किया? जानबूझकर अपने मस्तक पर यह पाप का घड़ा किसलिए रख लिया? क्या तू नहीं जानता कि वेश्या की संगति से नरक में जाना पड़ता है और वहाँ पर गर्म पुतलियों के साथ शरीर जलाया जाता है। क्या तुझे यह मालूम नहीं है कि वेश्यायें भी तबतक प्रेम करती हैं, जबतक उन्हें खूब धन दिया जाता है और उनके साथ अनेक प्रकार की क्रीड़ायें की जाती हैं, किन्तु जब धन नहीं रहता है, तब कामदेव जैसा रूपधारी मनुष्य भी वेश्या के घर पानी भरता है। इस प्रकार कहकर भानुदत्त मन ही मन पश्चात्ताप करने लगा और भाग्य को दोष देने लगा।

उधर चारुदत्त के द्वारा भेजी हुई वेश्या-दासी भानुदत्त के यहाँ प्रतिदिन आने लगी और उन्हें समझाया करती थी कि मुझे चारुदत्त ने भेजा है और खर्च के लिये द्रव्य मँगवाते हैं, इसलिए अधिक द्रव्य दीजिये। भानुदत्त भी पुत्र प्रेम के वशीभूत होकर वेश्यादासी को खूब धन बाँध देता था। इस प्रकार बहुत समय हो गया, तब सेठ ने विचार किया कि चारुदत्त बुरे व्यसन में फँस गया है, इसलिए कोई ऐसा उपाय करना चाहिए कि जिससे वह अपने घर वापिस आ जाये। वह मोह से इतना विह्वल हो गया कि उसे न तो कोई चिन्ता है और न अपने कुटुम्बीजनों का ही ख्याल रहा है, वह तो अपने राग रंग में फँसा हुआ है, इसलिए उसे किसी तरह से भी निकालना चाहिए। इस प्रकार विचार करके भानुदत्त ने एक नौकर को बुलाया और उसे समझाकर कहा कि तुम चारुदत्त के पास जाओ और उसे समझा-बुझाकर कहना कि भाई! अब अपने घर चलो, तुम्हारी माँ ने तुम्हें बुलाया है, तुम्हारे बिना सब लोग दुःखी हो रहे हैं और तुम्हारी चिन्ता में घर के सब आदमी बीमार हो गये हैं। और उसे हमारी तरफ से यह भी समझा देना कि भाई! मोह में इस प्रकार विह्वल न बनो। मोह शुभगति को नाश करनेवाला है और कुगति का मानो खुला हुआ दरवाजा ही है। मोह के वशीभूत होने से कोई सिद्धि तो होती नहीं है, प्रत्युत मोह के कारण शुभ ऋद्धियों का नाश हो जाता है। मोही जीव जीवनभर दुःख सहता है और उसे सुख का अंश भी नहीं मिलता।

मूर्ख प्राणी ही मोह के वशीभूत होते हैं। यह मोह ही तो सब

पापों की जड़ है। इसलिए तुम इस मोह को छोड़ों और हे रहस्यज्ञ! अपने घर चलो। इसके अतिरिक्त और भी जो तेरे मन में आवे, वह सब समझाकर कहना। चाहे जो कुछ हो, किसी भी तरह समझा–बुझाकर उसे अपने घर ले आओ।

इस प्रकार भानुदत्त ने नौकर को समझाकर चारुदत्त के पास भेजा। नौकर वेश्या के घर पहुँचा और वहाँ चारुदत्त को नमस्कार कर सुन्दर शब्दों में इस प्रकार बोला कि 'हे कुमार! मैं आपका नौकर हूँ, मुझे सेठ भानुदत्त ने आपके पास भेजा है, उनने जो–जो बातें कहीं है, उनको ध्यानपूर्वक सुनिये और उन पर विचार कीजिये। आपको माताजी ने बुलाया है, इसलिए जल्दी चलिये। आपके बिना घर के सब लोग बहुत दु:खी हैं।'

इस प्रकार जो–जो बातें भानुदत्त ने कही थीं, नौकर ने वे सब चारुदत्त से कहीं, परन्तु चारुदत्त यह सब सुनकर मौन ही रहे और उनने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। यह देखकर नौकर बहुत दु:खी हुआ और उसने भानुदत्त के पास जाकर सब हाल समझाकर कहा कि चारुदत्त नहीं आते, वह बुलाने से नहीं बोलते तथा वे काम और मोह में अत्यन्त अनुरक्त है। नौकर की यह बातें सुनकर सेठ को अपने हृदय में बहुत दु:ख हुआ।

चारुदत्त वेश्या के घर पर अत्यन्त प्रेम से सुखपूर्वक रहते थे। वेश्या उनके घर से खर्च मँगवाती थी और भानुदत्त भेज देते थे। जब इस प्रकार बहुत समय बीत गया और घर का द्रव्य कम होने लगा, तब सेठ ने विचार किया कि अब फिर कोई ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे कुमार अपने घर लौट आवे। तब

उनने उसी समय नौकर को बुलाकर कहा कि तुम अब फिर चारुदत्त के पास जाओ और उससे समझाकर कहो कि 'तुम्हारे पिता बहुत बीमार हैं, उनके शरीर में अत्यन्त पीड़ा है, उन्हें तृषित नेत्रों से तुम्हें देखने की बड़ी इच्छा है, इसलिए इस माया को दूर कर शीघ्र चलो!' ऐसा समझाकर सेठ ने नौकर को कुमार के पास भेजा।

नौकर वेश्यागृह में चारुदत्त के पास गया और विनयपूर्वक बोला कि मुझे आपके पिताजी ने भेजा है। उन्हें भयंकर रोग ने आ घेरा है, इसलिए वे बहुत व्याकुल हो रहे हैं। वे आपको देखने के लिये अत्यन्त लालायित हैं। इसलिए शीघ्र ही उनसे मिलने के लिये चलिये। इत्यादि बातें सुनकर चारुदत्त ने कहा कि मेरे जाने से क्या होगा? उनकी औषधि सुप्रसिद्ध राजवैद्यों से कराओ, अच्छे-अच्छे चिकित्सकों को बुलाओ और उन्हें मनवांछित धन दो, जिससे वे मन लगाकर दवा करें। इसी से पिताजी की तबियत अच्छी हो जायेगी। उनके इलाज कराने में जितना भी द्रव्य लगे, लगाओ। मैं स्वयं न तो वहाँ आना चाहता हूँ और न आ ही सकता हूँ। इतना कहकर चारुदत्त चुप हो रहे, और कोई जवाब नहीं दिया।

तब नौकर निराश होकर सेठ भानुदत्त के पास वापिस गया और चारुदत्त का सारा हाल कह सुनाया। रुद्रदत्त यह समाचार सुनकर विकल हो उठे और कुछ समय के लिये उनका शरीर सुन्न सा हो गया। वह कभी पश्चाताप करते थे तो कभी अपने दैव को दोष देते थे। इस प्रकार भानुदत्त चारुदत्त की स्थिति को

विचारते हुए अपना दु:खी जीवन बिताने लगे।

थोड़े दिनों के बाद भानुदत्त चारुदत्त को देखने के लिये फिर लालायित हो उठे और अपने सेवक को बुलाकर कहा कि अबकी बार फिर चारुदत्त के पास जा और उसे समझाकर कहना कि तू अपने दुष्ट स्वभाव को छोड़ दे, तुम्हारे पिता आज मर गये हैं, उनका अन्तिम संस्कार तुम्हारे ही हाथों से होगा, इसलिए चलो और उनकी अन्तिम क्रिया कर आओ। इस प्रकार नौकर को समझाकर भेजा और कहा कि अबकी बार किसी भी प्रकार चारुदत्त को अपने साथ बुलाकर ले आना।

नौकर चारुदत्त के पास गया और नमस्कार करके बोला कि कुमार! बड़े ही दु:ख की बात है कि आज आपके पिताजी का स्वर्गवास हो गया है। इसलिए आप शीघ्र ही अपने घर चलिये और उनका अन्तिम संस्कार करिये। तथा अपना उत्तराधिकार सम्हालिये। यह सुनकर चारुदत्त ने कहा कि मैं घर नहीं चल सकता। तू ही घर जा और अगर तगर चन्दन कुमकुमादि सुगन्धित बहुमूल्य द्रव्य लेकर तथा बेशकीमती वस्त्र उढ़ाकर सब कुटुम्बी परिवार के लोग मिलकर उनका अग्नि संस्कार कर देना और सबसे कह देना कि चारुदत्त नहीं आ सकता!

यह सुनकर नौकर ने चारुदत्त को बहुत समझाया, किन्तु वह कब माननेवाले थे? उनने एक न सुनी। तब वह अपना सा मुँह लेकर वापिस लौट आया और भानुदत्त से कहा कि चारुदत्त का आना अशक्य है। आपकी कही हुई सब बातें मैंने उनसे कहीं और मैंने भी बहुत कुछ समझाया, किन्तु उनके ध्यान में एक भी

बात नहीं आती है। यह कहकर चारुदत्त के द्वारा कही गई सब बातें भी ज्यों की त्यों सुना दीं। यह सुनकर सेठ भानुदत्त को भारी दु:ख हुआ, मानो वज्रप्रहार ही हो गया हो। वह रह-रहकर पश्चात्ताप और विलाप करने लगे तथा उनका तन-मन विकल हो उठा।

उधर चारुदत्त वेश्या के घर मनमाने भोगविलास करते थे और वेश्या-दासी प्रतिदिन चारुदत्त के घर से इच्छित धन ले जाया करती थी। इस प्रकार धीरे-धीरे छह वर्ष हो गये। इतने में भानुदत्त की आधी अर्थात् १६ करोड़ दीनार से भी अधिक सम्पत्ति स्वाहा हो गयी। भानुदत्त को अपने लड़के की इस प्रकार व्यसन तत्परता देखकर भारी दु:ख रहा करता था। एक दिन उनने विचार किया कि चारुदत्त मेरे लिये मात्र दु:ख का कारण हुआ है, अब उसका सुधरना अशक्य है। इसलिए इस दु:ख से मुक्त होने के लिये मैं तो सबेरे ही दीक्षा ले लूँगा। न जाने आगे क्या कैसा होनेवाला है। कर्मगति को कोई नहीं जानता। बड़े-बड़े सुर, असुर, यक्ष, खगपति, नागेश, नरेश, नारायण, चक्रवर्ती आदि सभी कर्म के अनुसार नाचते हैं। जो कुछ दैव में लिखा है उसे कोई मिटा नहीं सकता। इस जीव के साथ बलवान कर्म लगे हुए हैं, तद्नुसार दु:ख-सुख भोगना पड़ता है, उनका पिण्ड नहीं छूटता। कर्म के कारण ही यह जीव जगत में चक्कर लगा रहा है। इसलिए अब इनसे पिण्ड छुड़ाने के लिये जिनदीक्षा धारण करना चाहिए। यह संसार दु:ख का धाम है, इसमें चक्कर लगाते हुए जीव पार नहीं पाता। अब तो प्रात:काल ही जिन भगवान की शरण में जाकर दीक्षा लेना चाहिए।

ऐसा विचार करके तत्काल ही अपनी पत्नी को बुलाया और उससे सब हाल कह सुनाया। उसके बाद पुत्रवधू को बुलाया और उससे हृदय खोलकर सब बातें कहीं। और कहा कि हे पुत्री ! दृढ़तापूर्वक शील और संयम का पालन करना तथा श्राविका के व्रत पालने में नित्य सावधानी रखना। मैं तो अब जिनेन्द्र भगवान की शरण में जाता हूँ और कहीं जिन दीक्षा लेकर जन्म, जरा, मरण का नाश करूँगा। चारुदत्त यदि धन मंगावे तो उसे देती रहना। 'सच है पुत्र का मोह भी बहुत बलवान होता है।'

इसके बाद भानुदत्त ने वन में जाकर एक मुनिराज के निकट जिनदीक्षा अंगीकार कर ली।

★ ★ ★

चारुदत्त की धन हानि।

जानास्येव जघन्यातो वृत्तिर्यद्वित्तवान् प्रियः।
हेयः पीलितसारः स्यादिक्ष्वलक्तकवन्नरः॥

– हरिवंशपुराण

उधर चारुदत्त दिन-रात राग-रंग में मस्त रहते थे। उन्हें आगे-पीछे की कुछ भी खबर नहीं थी। वह तो भोगविलास में मस्त होकर सब कुछ भूल गये थे। वेश्यादासी प्रतिदिन घर जाती थी और मनमाना धन ले आती थी। इस प्रकार धीरे-धीरे छह वर्ष और हो गये। इतने में बाकी का सोलह करोड़ का द्रव्य वेश्या सेवन में पूरा हो गया। इस प्रकार जब सब धन समाप्त हो गया, तब जो बारह हजार सुवर्ण मुद्रिकायें थी, वे भी समाप्त कर दीं। उसके बाद मकान गहने रख दिया। फिर भी वेश्यासक्त चारुदत्त की आँखें नहीं खुलीं और अपनी पत्नी के गहनों पर नियत गयी। वह बेचारी सुशीला गृहिणी अपने बहुमूल्य मोतियों के गहने कुछ दिन तक देती रही और अपने कर्म को दोष देकर दु:खी हो कालयापन करती रही।

एक दिन एक चतुर पड़ोसिन महिला ने आकर चारुदत्त की पत्नी से कहा कि बहिन! तुम्हारी स्थिति अब बहुत खराब हो गयी है। अब तुम कुछ भी द्रव्य मत देना और उस वेश्यादासी को विनयपूर्वक समझाकर अपना सब हाल सुनाना। और उससे कहना कि मेरे पास अब कुछ भी नहीं रहा, सूत कातने पर जो कुछ प्राप्त होता है, उसी से घर की गुजर चलती है। यह बात हो ही रही थी कि इतने में ही वेश्यादासी वहाँ आ पहुँची और बोली

कि चारुदत्त ने मुझे द्रव्य लेने भेजा है, इसलिए अबकी बार अधिक धन दीजिए।

तब चारुदत्त की पत्नी मित्रवती ने उस दासी का आदर-सत्कार और अनुनय विनय करके कहा कि अब मेरे पास कुछ भी नहीं है, चरखा कातकर सूत बेचती हूँ और उससे अपना काम जैसे-तैसे चलाती हूँ। फिर भी यदि हमारे प्राणनाथ को आवश्यकता हो तो मैं अपना शरीर बेचकर भी उनकी इच्छा पूरी कर सकती हूँ। दासी यह बात सुनकर पिघल गयी और मित्रवती की पतिभक्ति देखकर प्रसन्न हुई तथा बोली कि अब तुम मन में दुःख मत करो, जो होना था, सो हो गया। यों कहकर दासी चारुदत्त के पास गयी और वेश्या के समक्ष ही चारुदत्त से कहा कि सेठजी! अब तो आपके यहाँ फूटी कौड़ी भी बाकी नहीं है। वहाँ तो अब चरखे पर गुजर चलती है। तुम्हारी माता और पत्नी भूखों मरती हैं। वे जैसे-तैसे अपने दिन पूरे कर रही हैं। मैं उनके दुःख का वर्णन नहीं कर सकती। आपका मकान और समस्त सामान तक बिक गया है।

वेश्या यह समाचार सुनकर आश्चर्यचकित हो विचारने लगी कि इतनी विभूति अल्प समय में कहाँ बिला गई? अब तो चारुदत्त बिल्कुल धनहीन हो गया है। उसे अपने यहाँ रखने से अब क्या लाभ है? ऐसा विचारकर बसन्तमाला ने चारुदत्त से स्पष्ट कह दिया कि सेठजी! अब आप अपने घर जाइये, आपके घर में लोग बहुत दुःखी हैं। वहाँ अब द्रव्य तो रहा ही नहीं है, इसलिए हम आपका क्या करेंगी? जब आपका फिर अच्छा

समय आवे, तब आप पुनः यहाँ आइयेगा।

चारुदत्त ने बसन्तमाला की यह सब बातें चुपचाप सुन लीं और विष का सा घूँट पीकर निरुत्तर हो बैठा रहा। और मन ही मन विचारने लगा कि धन के विनाश होने की मुझे विशेष चिन्ता नहीं है। क्योंकि यह तो भाग्यानुसार आता है और जाता है किन्तु दुःख इस बात का है कि धनहीन होने पर स्नेही भी स्नेह छोड़ देते हैं।*

फिर भी उसे घर की कोई चिन्ता नहीं थी। वह तो मात्र वेश्या-पुत्री बसन्ततिलका में तल्लीन था। उसे उसके सिवाय और कुछ सूझता ही नहीं था। बसन्ततिलका भी चारुदत्त को प्राणों से भी अधिक प्यारा समझती थी। और उसे एक पलभर के लिये भी नहीं छोड़ती थी। इस अटूट प्रेम को देखकर बसन्तमाला मन ही मन कुढ़ने लगी और मन ही मन गालियाँ तक देने लगी। एक दिन उसने एकान्त में वसन्ततिलका से कहा कि पुत्री! मेरी एक बात सुन! वेश्याओं की यह नीति है कि जो धनहीन हो गया हो, उससे प्रीति छोड़कर किसी धनवान से प्रेम करना चाहिए। वेश्या-शास्त्र कहता है कि द्रव्यहीन पुरुष से समागम नहीं करना चाहिए। वेश्यायें तो धनवानों को भोगती हैं, वे धनहीनों की संगति कदापि नहीं करतीं। वेश्याओं की यही रीति है, इसलिए अब तू चारुदत्त से प्रेम करना छोड़ दे।

---

* सत्यं न मे विभवनाशकृतास्ति चिन्ता,
भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति।
एतत्तु मां दहति नष्टवनाश्रयस्य,
यत्सौहृदादपि जनाः शिथिलीभवन्ति॥ – मृच्छकटिकम्।

जिसके घर में द्रव्य के बिना सब लोग दुःखी हो रहे हैं और भूखे रहकर दिन बिता रहे हैं तथा जिनके यहाँ खाने-पीने के लिये कुछ भी नहीं रहा है, उससे तू प्रीति कर रही है, यह गणिकाओं की रीति के विरुद्ध है। इसलिए बेटी! अब तू चारुदत्त से प्रेम करना छोड़ दे और उसे अपने घर जाने दे, जिससे वह अपने कुटुम्ब परिवार से मिले और अपने काम में लग जाये। इस प्रकार अनेक बातें कहकर वसन्ततिलका को समझाया। माता की समस्त बातें सुनकर वह मधुर वचनों से बोली कि माताजी! इस भव में तो मेरा पति चारुदत्त ही है, दूसरे सब भाई और पिता के समान हैं। मैं तो इस जीवन के लिये चारुदत्त को ही अपना स्वामी निश्चित कर चुकी हूँ। इसके सिवाय अन्य पुरुष कुबेर के समान भी धनवान क्यों न हो तो भी वह मेरे काम का नहीं है। माँ! जिसके घर से आई कुई करोड़ों दीनारों से तेरा घर भर गया, उसी को तू त्याग कराना चाहती है? चारुदत्त तो अनेक कलाओं में पारंगत है, परम सुन्दर है, उत्तम धर्म का परमोपदेष्टा है, महा उदार है, त्यागी है, भला मैं उसका कैसे त्याग कर सकती हूँ?*

यह उत्तर सुनकर बसन्तमाला का जी जल गया और चिन्ता में पड़ गयी तथा विचारने लगी कि इन दोनों का प्रेम बहुत गहरा है। इनकी प्रीति की रीति निराली है। इसे किसी प्रकार भी छुड़ाना चाहिए और चारुदत्त को अपने घर से निकालना चाहिए।

---

* कौमारं पतिमुज्झित्वा चारुदत्तं चिरोषितं।
कुवेरेणापि मे कार्यं नेश्वरेण परेण किं॥
कलापारमितस्यांव रूपातिशययोगिनः।
सद्धर्मदर्शिनो मेऽस्य स्यात्त्यागस्त्यागिनः कुतः। – हरिवंशपुराण

इस प्रकार वह अनेक तरह से विचार करती थी और मन ही मन गालियाँ दिया करती थी।

एक दिन बसन्तमाला को एक उपाय सूझा और उसने चारुदत्त तथा बसन्ततिलका के भोजन में कोई मादक वस्तु मिला दी। दोनों ने आनन्द से भोजन किया और रात्रि को बेखबर होकर सो गये।

★ ★ ★

चारुदत्त का विष्टाग्रह में पतन

पक्षविकलश्च पक्षी, शुष्कश्च तरुः सरश्च जलहीनम्।
सर्पश्चोद्धृतदंष्ट्रस्तुल्यं लोके दरिद्रश्च॥

मृच्छकटिकम्॥

जब दो घड़ी रात बीत गई, तब बसन्तमाला ने उन्हें बेभान स्थिति में पाया। यह देखकर वह मन ही मन अत्यन्त प्रसन्न हुई और सोचा कि अब मेरा मनोरथ सिद्ध हो गया। ऐसा विचार कर उसने चारुदत्त के सब आभरण उतार लिये और उसके हाथ-पाँव बाँधकर उसे एक कम्बल में लपेटा और गठरी बाँध दी। चारुदत्त तो नशे में चूर था, इसलिए उसे कुछ भी खबर नहीं पड़ी। तब वेश्या बसन्तमाला ने उस गठरी को उठवाकर एक विष्टागृह में डलवा दी।*

* चारुदत्त को पाखाने में डालने की या आगे लिखी हुई कोई ऐसी बात हरिवंशपुराण या आराधनाकथाकोश आदि में नहीं है। वहाँ तो मात्र घर से निकाल देने की ही बात लिखी है।

उसने चारुदत्त को विष्टागृह में डालते हुए तनिक भी संकोच नहीं किया। विष्टागृह में पड़े-पड़े चारुदत्त ने जो कष्ट सहा, उसे वही जानते थे या उसके ज्ञाता सर्वज्ञ हो सकते हैं। चारुदत्त का सारा शरीर बँधा हुआ था, इसलिए वह सुध आने पर भी नहीं उठते थे। थोड़ी देर में उन्हें नशा के कारण फिर तन्द्रासी आ जाती थी और कुछ समय बाद वह थोड़ासा सिटपिटाने भी लगते थे।

इतने में एक सूकरी विष्टा खाने के लिये विष्टागृह में गई और चारुदत्त का मुँह चाटने लगी। चारुदत्त ने समझा कि बसन्ततिलका ही मुझे आलिंगन कर रही है और मैं उसके महल में पड़ा हुआ हूँ। इसलिए मदमत्त चारुदत्त बोले कि बसन्ततिलके! मुझे बहुत नींद आ रही है, तू क्यों सताती है? अभी तू अलग हो जा और जब मैं जागूँ तब बोलना। मोही एवं ज्ञान भ्रष्ट चारुदत्त इसी प्रकार बड़ी देर तक प्रलाप करते रहे। उन्हें अपनी दुर्दशा का तनिक भी भान नहीं था। वास्तव में कर्म की गति बड़ी ही विचित्र है। कहाँ तो वह गुणवान पुरुष और उसकी चतुराई तथा कहाँ उसका यह अपमान!

चारुदत्त वहाँ पड़ हुए अत्यन्त दुःख सहन कर रहे थे, फिर भी उन्हें बसन्ततिलका का ही ध्यान था। उन्हें और कुछ नहीं सूझता था, वह तो मात्र बसन्ततिलका का ही नाम रट रहे थे। इतने में उधर से नगररक्षक एक कोतवाल निकला और उसने वह आवाज सुनी। आवाज के सुनते ही वह चौकन्ना-सा हो गया और इधर-उधर देखने लगा। थोड़ी देर में उसे मालूम हुआ कि पास के ही पाखाने में से किसी मनुष्य की आवाज आ रही है।

यह निश्चय करके कोतवाल ने तुरन्त ही अपने सिपाही को बुलाया और कहा कि इस पाखाने में कोई आदमी मालूम होता है। तुम वहाँ जाओ और उसे वहाँ से ले आओ।

सिपाही पाखाने में गया और वहाँ पर किसी आदमी को बँधा हुआ पड़ा देखकर कहा कि तू कौन है? तेरा क्या नाम है? तू किस जगह का रहनेवाला है? तेरे माँ-बाप का क्या नाम है? तू रात को यहाँ पर क्यों और कैसे आया है? तुझे इस प्रकार किसने बाँधा है? और यहाँ पर कौन डाल गया है? समस्त हाल मुझसे कह दे, मैं तुझे यहाँ से छुड़ाकर यथेच्छ स्थान पर पहुँचा दूँगा।

यह सुनकर चारुदत्त ने कहा कि मैं इसी नगर का रहनेवाला हूँ, मेरे पिता का नाम भानुदत्त सेठ है और मेरा नाम चारुदत्त है। मुझे यहाँ पर वेश्या ने बेभान स्थिति में डाला है। यह सुनकर सिपाही ने कोतवाल को सब हाल सुनाया। कोतवाल ने तुरन्त ही चारुदत्त को पहिचान लिया और उसे उसी समय विष्टागृह से निकालकर बन्धनमुक्त कर दिया। उसके बाद चारुदत्त को बहुत धिक्कारा और कहा कि तुम्हारे पिता तो बड़े ही धर्मात्मा सज्जन हैं, उनके तुम ऐसे कपूत पैदा हुए हो? सेठजी की ३२ करोड़ दीनार की सम्पत्ति थी, वह तुमने कुकर्म में पड़कर स्वाहा कर दी और जन्मभर के लिये अपने सिर पर अपयश का टीका लगाया है।

इस कथा को लिखते हुए ग्रन्थकार उपदेश देते हैं कि हे सज्जनों! परस्त्री का त्याग करो। इस काम बुद्धि का त्याग कर कामदेव को वश में करो। ऐ मूर्ख प्राणी! इस लड़कपन को छोड़ दे। तेरे कुकृत्य को जानकर लोग हँसेंगे और तेरी मान-प्रतिष्ठा

धूल में मिल जायेगी। इसलिए परस्त्री का त्याग कर। मैं विनती करता हूँ कि हे भाईयो! मेरी शिक्षा को ग्रहण करो। जो मूर्ख स्वस्त्री को छोड़कर परस्त्री या वेश्या सेवन करते हैं, उनके जीवन को धिक्कार है। ऐ सज्जनो! जब यह पाप कथा प्रगट हो जाती है, तब मान-प्रतिष्ठा धूल में मिल जाती है। इसलिए फिर भी मैं एकबार प्रार्थना करता हूँ कि परस्त्री और वेश्या का त्याग करो। जो मूर्ख अपना धन खोकर परस्त्री सेवन करेंगे, उनकी चारुदत्त के समान दुर्गति होगी और वे अन्त में महादुःखदायी दुर्गति में जायेंगे।

चारुदत्त की दशा देखकर कोतवाल अपने मन में नाना प्रकार के विचार करने लगा और कर्मों को दोष देने लगा तथा कहने लगा कि तकदीर की लकीर का कोई नहीं मिटा सकता, जो कुछ भाग्य में होता है, वह होकर ही रहता है। कभी राजा अपने दलबल सहित हाथियों पर सवारी करके सुखपूर्वक विचार करते हैं और कभी वे ही भाग्य का फेर होने पर रंक दशा में दाने-दाने को मोहताज होकर भीख माँगते फिरते हैं। कभी यह जीव इन्द्रिय-सुख में मग्न रहता है, तो कभी उसके परिणामस्वरूप नरकों में महान दुःख भोगता है। तात्पर्य यह है कि विधि का विधान अमिट है। कर्म जो करता है, वह होकर ही रहता है। स्वर्गलोक, मध्यलोक या पाताललोक कहीं भी ढूँढकर देखो तो मालूम होगा कि कर्म के समान बलवान दूसरा कोई नहीं है।

इस प्रकार बहुत कुछ कहकर कोतवाल अपने काम पर चला गया और चारुदत्त को उसके मकान पर भिजवा दिया।

★ ★ ★

चारुदत्त का गृहागमन

एतत्तु मां दहति यद्गृहमस्मदीयं।
क्षीणार्थमित्यतियथः परिवर्जयन्ति॥
संशुष्कसान्द्रमदलेखमिव भ्रमन्तः।
कालात्यये मधुकराः करिणः कपोलम्॥

– मृच्छकटिकम्

चारुदत्त अपने मकान पर गया और भीतर प्रवेश करने लगा। इतने में पहरेदान ने भीतर जाने से रोका, जो उस सेठ की तरफ से नियत किया गया था, जिसके यहाँ चारुदत्त का वह मकान गहने रख दिया गया था। चारुदत्त ने कहा कि तू मुझे क्यों रोकता है? यह तो सेठ भानुदत्त का मकान है। तब नौकर बोला कि भाई! यह तो गहने रख दिया गया है। यह सुनकर चारुदत्त को भारी दुःख हुआ। और काँपते हुए उस सिपाही से पूछा कि हमारी माता और पत्नी कहाँ रहती हैं? क्या तुम बताने की कृपा करोगे? तब उस पहरेदार ने कहा कि आप घबराइये नहीं, मेरे साथ आइये। ऐसा कहकर वह चारुदत्त को उसकी माता और स्त्री के स्थान पर लिवा ले गया और एक झोंपड़ी दिखाकर कहा कि वे इसी में रहती हैं।*

चारुदत्त झोंपड़ी के भीतर गये और माता के चरणों में जाकर लोट गये! वह लज्जा के मारे मानों धरती में गड़े जाते थे और मन ही मन विचार करते थे कि दुःखानुभव के बाद सुख का होना तो

* हरिवंशपुराण में अपने मकान में जाने का ही कथन है। मकान बिकने और झोंपड़ी में रहने तथा सूत बेचने आदि की कोई बात नहीं है।

शोभता है, किन्तु सुखी होने के बाद जो दुःखी-दरिद्री हो जाता है, वह जीता हुआ भी मरे के समान है।[१] दरिद्रता और मरण में से मरण अच्छा है, कारण कि मरण में अल्प क्लेश होता है और दरिद्रता सदा दुःख देती है।[२]

चारुदत्त की दीन-हीन, मैली-कुचैली दशा देखकर उनकी माता और स्त्री को भारी दुःख हुआ। बाद में माता ने चारुदत्त का उबटन करके स्नान कराया और अच्छे कपड़े पहिनने को दिये। इसके बाद चारुदत्त माता के गले लग गये और फूट-फूटकर रोने लगे और अपनी निन्दा करने लगे। तथा बहुत विलाप करते हुए बोले कि माताजी! मैं बड़ा पापी हूँ, मूर्ख हूँ, दुष्ट हूँ। मैंने संसार भर में बदनामी कराई है।

इसके अतिरिक्त चारुदत्त ने अपनी माता से और भी सुख-दुःख की सभी बातें कह सुनाई।

तब माता ने आँखों में आँसू भरकर कहा कि बेटा! तूने बत्तीस करोड़ दीनार की सम्पत्ति वेश्या के यहाँ गँवा दी और ऊपर से यह अपयश उठाना पड़ा तथा तेरे पिताजी भी तेरे ही दुःख से दुःखी होकर चले गये हैं। यह सब दुःख कथा सुनकर

---

१ सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते।
धनांधकारेषिव दीपदर्शनम्॥
सुखात्तु यो याति नरो दरिद्रतां।
धृतः शरीरेण मृतः स जीवति॥

२ दारिद्र्यान्मरणाद्वा, मरणं मम रोचते न दारिद्र्यम्।
अल्पक्लेशं मरणं दारिद्र्यमनन्तकं दुःखम्॥ – मृच्छकटिकम्।

चारुदत्त बहुत दु:खी हुए और फिर वह अपनी पत्नी के पास गये।

जब चारुदत्त से उनकी पत्नी मित्रवती मिली, तब वह खूब रोई और अपनी तमाम दु:ख कहानी सुनाई। चारुदत्त भी सब बातें सुनकर बहुत दु:खी हुए और बोले कि प्रिये! तुम गुणवती हो, शीलवती हो, धैर्यवती और अद्वितीय बल्लभा हो। किन्तु मैं पापों की खान, महान दुष्टात्मा हूँ। मैंने तुझे बहुत दु:ख दिया है। तुझ जैसी सुशीला पत्नी को त्यागकर मैं वेश्या-व्यसनी बना और धर्म खोया। उसने मेरा सारा धन खींच लिया और निर्धन होने पर उसकी माता ने मुझे विष्टागृह में डालकर बड़ी दुर्दशा की और नरकों से भी अधिक दु:ख दिया। जबतक मेरे पास धन रहा, तबतक वेश्या ने खूब प्रेम किया और धनहीन होने पर उसकी माता ने मेरा भारी अपमान किया है।

सच है, भाग्य के क्षीण होने पर मित्र भी शत्रु हो जाते हैं और जो सदा से प्रेम करते आते हैं, वे भी प्रेम का त्याग कर देते हैं।*

अस्तु, जो होना था सो हो चुका। जो भाग्य में लिखा होता है, वह होकर ही रहता है। संसार में कर्म महान बलवान है, उन्हें कोई टाल नहीं सकता। ग्रन्थकार कहते हैं कि सूर्य पूर्व में उदय न होकर पश्चिम में उदय हो जावे, मेरुपर्वत पर कमल खिलने लगें, चन्द्रकला में अग्नि जलने लगे, समुद्र की थाह प्राप्त हो

* यदा तु भाग्यक्षयपीड़िता दशां,
नर: कृतान्तोपहितां प्रपद्यते।
तदास्य मित्राण्यपि यान्त्यमित्रतां,
चिरानुरक्तोऽपि विरज्यते जन:॥ - मृच्छकटिकम्।

जावे, सर्प के मुख में अमृत का चाम हो जावे, अग्नि से रुई न जले; तात्पर्य यह है कि ये सब असम्भव कार्य एक बार भले ही हो जावें, किन्तु करोड़ों उपाय करने पर भी विधि का विधान अन्यथा नहीं हो सकता।

यथा – कबहूं रवि आन उगे दिश वारुन सागर थाइ किनी जु धरै।
मेरुपै फूल कदाचित अंबुज, इन्दुकलाहुमें आग जरै॥
अमृत वास करै अहिके मुख, तूल हुतासनमें न जरै।
कोटि उपाय करो 'भारामल' करम लिखी कबहूं न टरै॥

सच बात तो यह है कि भले ही बुद्धिमान लोग लाखों उपाय करें किंतु जो नहीं होना है, वह कभी हो नहीं सकता। और जो होनहार है, वह मिट नहीं सकती। मैंने पूर्व भव में जो कर्मबन्ध किया था, उसका यह फल भोगता हूँ। अब मुझे फिर अपने भाग्य की परीक्षा करना है। मेरा विचार विदेश में निकल जाने का है। वहाँ डटकर व्यापार करूँगा और बहुत द्रव्य कमाकर लाऊँगा। प्रिये! मैंने सवेरे ही विदेश प्रयाण करने का निश्चय कर लिया है।

यह सुनकर मित्रवती बोली कि पतिदेव! विदेशगमन की बात सुनकर मुझे भारी दु:ख होता है। विदेश न जाकर अपने घर ही रहिये और यहीं पर छोटा-मोटा व्यापार करिये। मैं भी प्रतिदिन सूत कातूंगी और उससे गुजर चलाऊँगी। मेरे सूत की आय से अपना खर्च भलीभाँति चल सकेगा। इसलिए विदेश जाने का विचार छोड़ दीजिए। यहीं पर साथ ही रहकर सुख-दु:ख से अपने दिन अच्छी तरह कट जायेंगे। बाहर न जाने कैसे-कैसे सुख-दु:ख पड़ेंगे। वहाँ कौन सहायक होगा? इसलिए हे नाथ!

इस दासी की प्रार्थना को स्वीकार करिये। आपको यह उचित नहीं है कि आप मुझे यहाँ अकेली छोड़कर स्वयं परदेश चले जावें।

★ ★ ★

धन कमाने की चिन्ता

धनैर्वियुक्तस्य नरस्य लोके किं जीवितेनादित एव तावत्।
यस्य प्रतीकारनिरर्थकत्वात्कोपप्रसादा विफलीभवन्ति॥

– मृच्छकटिकम्।

चारुदत्त, मित्रवती की बातें सुनकर बोले कि प्रिये! तुम ठीक कहती हो, किन्तु धन के बिना काम नहीं चल सकता। यहाँ रहकर धन कमाना अशक्य है। धन के बिना न तो मान-सन्मान होता है और न कोई बात ही पूछता है। धन के बिना पूत, कपूत कहलाता है और धन बिना विद्वान की भी कोई कीमत नहीं रहती। धन बिना सेवक सेवा नहीं करता। राजा भी धन के बिना मारा-मारा फिरता है। धन के बिना कोई भी काम नहीं हो सकता। धनहीन की न तो कोई संगति करता है और न कोई आदरपूर्वक बुलाता ही है। जहाँ देखो वहीं निर्धन का अनादर होता है। यदि सच पूछा जाये तो निर्धनता एक प्रकार का छट्ठा पाप ही है।* इसलिए मैं

---

* संगं नैव हि कश्चिदस्य कुरुते, संभाषते नादरा-
त्संप्राप्तो गृहमुत्सवेषु धनिनां सावज्ञमालोकत।
दूरादेव महाजनस्य विहरत्यल्पच्छदो लज्जया,
मन्ये निर्धनता प्रकाममपरं षष्ठं मङापातकम्॥ – मृच्छकटिकम्

धन कमाने अवश्य जाऊँगा। यहाँ रहकर तो भूखों ही मरना होगा। विदेश जाकर द्रव्य कमाऊँगा और तब कुछ सुख-शान्ति मिलेगी।

यह सुनकर मित्रवती बोली कि मैं तो विशेष क्या कह सकती हूँ, किन्तु आप अपने काकाजी तथा माताजी की भी सलाह लीजिये और जैसा वे कहें, वैसा करिये। चारुदत्त को यह सलाह अच्छी लगी और वह माता के पास गये और विनयपूर्वक बोले कि माताजी! यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं विदेश जाऊँ और वहाँ पर कुछ उद्योग करके धन कमाऊँ। कुछ द्रव्य होने पर ही काम चलेगा, इसलिए आप अपनी अनुमति दीजिए। यह सुनकर चारुदत्त की माता को बहुत दु:ख हुआ और बोली कि बेटा! तू यह क्या कह रहा है? यह अयोग्य बात सुनकर तो मुझे भारी दु:ख हो रहा है। तू अब ऐसी बातें मत कर। मेरे लाल! विदेश में क्या धरा है? जो कुछ भी उद्यम बन सके, वह अपने देश में रहकर ही करो। तू बारह वर्ष बाद मिला है, इसलिए मैं तुझे देखकर अपने सब दु:ख भूल गयी हूँ। तेरी कुशलता में ही मुझे आनन्द है। इसलिए यहीं मेरी आँखों के सामने रहकर उद्योग-धन्धा कर। बाहर जाना किसी भी तरह योग्य नहीं है।

तब चारुदत्त बोले कि माताजी! मैंने बहुत अपयश सहा है और घर में द्रव्य भी नहीं रहा, इसलिए अब मुझसे मुँह नहीं दिखाया जाता। मैं नगर में क्या मुँह लेकर फिरूँगा? अब कौन विश्वास करेगा? मुझे तो सभी लोग तूल के समान तुच्छे समझेंगे। दरिद्रता सर्वत्र शंका का स्थान बन जाती है।* इसलिए विदेश जाकर जब

---

* क: श्रद्धास्यति भूतार्थे सर्वो मां तूलष्यिति।
शंकनीया हि लोकेऽस्मिन्निष्प्रतापा दरिद्रता॥ – मृच्छकटिकम्

मैं अच्छा धन कमाकर लाऊँगा, तभी घर में प्रवेश करूँगा। आप विश्वास रखिये कि मैं धन कमाकर शीघ्र ही आपकी सेवा में वापिस लौटूँगा।

इस प्रकार चारुदत्त ने अपनी माता को अनेक प्रकार से समझाकर निरुत्तर कर दिया। देवल ने भी जब चारुदत्त का दृढ़ निश्चय जाना, तब उसने अपने भाई को बुलाया और उससे कहा कि भाई! मैंने चारुदत्त को बहुत समझाया, किन्तु वह अपने परदेशगमन के निश्चय को नहीं छोड़ता है। तेरा तो यह जमाई है, अब तू भी इसे कुछ समझावे तो अच्छा है। सम्भव है कि तेरे कहने-सुनने से यह मान जावे। यह सुनकर सिद्धार्थ ने चारुदत्त से कहा कि कुमार! परदेश में जाने से क्या लाभ है ? तुम्हें जितने धन की आवश्यकता हो, मैं देने को तैयार हूँ। मेरी सोलह करोड़ की सम्पत्ति है। बोलो, तुम्हें कितना धन चाहिए? यथेच्छ द्रव्य लेकर तुम यहीं पर मन लगाकर व्यापार करो और जब तुम्हारे पास पर्याप्त धन हो जाये, तब मेरा रुपया मुझे दे देना।

यह सुनकर चारुदत्त बोले कि मेरा दृढ़ निश्चय नहीं टल सकता। मुझे अब यहाँ रहना अच्छा नहीं लगता। परदेश में जाकर भलीभाँति उद्यम करूँगा और उद्यम से ही द्रव्य कमाऊँगा। उद्यम से ही धन मिलता है और उद्यम से ही सब कार्यों की सिद्धि होती है। उद्यम के बिना कुछ काम नहीं हो सकता। संसार में उद्यम ही प्रधान है। इसलिए निश्चय ही मैं विदेश जाकर उद्यम करूँगा। यहाँ रहना तो मुझे मौत से भी अधिक बुरा लगता है। यह सुनकर सिद्धार्थ निरुत्तर होकर चुप रह गया।

इस प्रकार चारुदत्त का निश्चय जानकर माता देवल की आँखें भर आईं। वह आँसू बहाती हुई बोली कि बेटा! पहिले तो तू पढ़ता रहा, इसलिए मेरे साथ नहीं रह सका। फिर तूने बारह वर्ष वेश्या के घर बिताये, तब मैंने वह दिन बड़े ही दुःख में काटे। और अब जैसे-तैसे तेरा मुँह देख पाया तो तू इस प्रकार अप्रिय बातें सुना रहा है। बेटा! इस बूढ़ी माँ पर दया कर, और परदेशगमन का विचार छोड़ दे। इत्यादि।

चारुदत्त को तो अपने नगर में रहना मरने से भी बुरा लग रहा था, इसलिए वे विनयपूर्वक समझाकर माता से कहने लगे कि मुझे यहाँ रहते हुए भारी लज्जा आती है, इसलिए मैं यहाँ किसी भी तरह नहीं रह सकता। अब मैं तुझसे विशेष क्या कहूँ? मेरी आन्तरिक दशा को जानकर तू मुझे आज्ञा दे दे, यही अच्छा है। जैसे तूने इतने दिन निकाले हैं, वैसे कुछ दिन और सही। अपनी पुत्रवधू से सेवा कराना और आनन्द से रहना, मैं शीघ्र ही लौटकर आऊँगा। ऐसा कहकर चारुदत्त ने एक चतुर ज्योतिष को बुलाया और उससे शुभ मुहूर्त निकलवाकर जाने का दिन निश्चय किया। मार्ग-व्यय के लिये कुछ भी पास में नहीं था, इसलिए अपनी स्त्री के बचे हुए गहने लेकर चलने की तैयारी की।

★ ★ ★

विदेशगमन

अहो पुण्यं विना जन्तोर्नोद्यमो सिद्धिदो भवेत्।
तस्मात् पुण्यं जिनेन्द्रोक्तं कर्तव्यं धीधनैः सदा॥

– आराधना कथाकोश

प्रात:काल होते ही चारुदत्त ने धन कमाने की इच्छा से परदेश के लिए प्रयाण किया। जब उनके मामा ने यह खबर सुनी तो उसे भारी दु:ख हुआ। और मोह के वशीभूत होकर चारुदत्त के पीछे-पीछे गया। और थोड़ी देर बाद चारुदत्त को पाकर कहा कि मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ। इस प्रकार दोनों परदेश के लिये रवाना हो गये। मार्ग में अपने परिचित ग्राम, गली, बाग, नदी, तालाब और जंगल आदि को तय करते हुए दोनों चले जाते थे। कुछ दिनों के बाद वे बलाका देश में पहुँचे* और वहाँ

* व्यापार सम्बन्धी इस प्रकरण में सभी कथाओं में बहुत पाठभेद है। किसने किस आधार से ऐसा लिखा है सो जानना कठिन है। (१) हरिवंशपुराण में यह प्रकरण इस प्रकार है :—

''चारुदत्त अपने मामा के साथ सबसे पहले उत्तीरावर्त में गये। वहाँ कपास खरीदा और ताम्रलिप्त नगरी में बेचने के लिये ले गये। मार्ग में वनाग्नि लग जाने से कपास जल गया। तब चारुदत्त मामा को छोड़कर घोड़े पर सवार हो पूर्वदिशा की ओर गये। मार्ग में घोड़ा मर गया। तब चारुदत्त पैदल ही जैसे-तैसे प्रियंगुपुर नगर में पहुँचे। वहाँ अपने पिता के मित्र सुरेन्द्रदत्त के पास रहे। वहाँ से समुद्र यात्रा की। छह बार सफलता मिली। सातवीं बार जहाज फट जाने से कमाई हुई ८ करोड़ की सम्पत्ति नष्ट हो गयी। समुद्र में एक तख्ते के सहारे किनारे पर आये। वहाँ एक साधु से भेंट हुई।''

(२) आराधना कथाकोश में यह प्रकरण कुछ परिवर्तन के साथ इस प्रकार है — ''चारुदत्त मामा के साथ सबसे पहले उलूखदेश के उशीरावर्त नगर में गया। वहाँ उसने कपास खरीदा और ताम्रलिप्ता नगरी में बेचने को गया। मार्ग में वनाग्नि के कारण कपास जल गया। वहाँ से चारुदत्त समुद्रदत्त के जहाज द्वारा पवन्द्वीप में

सीमावर्ती नदी के तट पर टिक रहे। मार्ग में उनने व्यापार के लिये अनेक जगह कई प्रयत्न किये, किन्तु कहीं भी सफलता नहीं मिली।

तब दोनों दुःखी होकर बोले कि न जाने भाग्य में क्या वदा है। अपने पास कोई ऐसी अच्छी पूँजी भी नहीं है कि जिससे कोई व्यापार किया जा सकेम। जो कुछ थोड़ा बहुत है, उससे क्या हो सकता है ? फिर भी वे हताश नहीं हुए और निश्चय किया कि थोड़ी पूँजी से कोई छोटा ही व्यापार करेंगे। यह विचार करके उनने मूरा खरीदे। और उनकी गठरी बाँधकर दोनों अपने सिर पर रखकर दूसरे नगर को चल दिए, चलते-चलते वे पलासपुर नगर में पहुँचे। वह पलासपुर नगर बहुत ही वैभव सम्पन्न था। वहाँ के बाजार बहुत ही सुन्दर थे। वहाँ पर अति उच्च मन्दिर भी

गया। वहाँ बहुत धन कमाया। फिर देश की ओर लौट रहा था कि जहाज फटा और सब माल डूब गया। इस प्रकार सात बार हुआ। अन्त में वह भी समुद्र में गिरा और एक तख्ते के सहारे किनारे पर पहुँचा। वहाँ से वह राजगृह नगर में पहुँचा, वहाँ एक संन्यासी से भेंट हुई।''

(३) बखतावरमल कृत आराधना कथाकोष में यह प्रकरण इस प्रकार है— ''चारुदत्त मामा के साथ सर्व प्रथम उलुरबलदेश के मूसरावर्त नगर में गया। वहाँ कपास खरीदकर बोरा भरवाकर ताम्रलित नगरी को गया। मार्ग में अग्नि लगने से कपास भस्म हो गया। फिर वह समुद्रदत्त सेठ के साथ पवनद्वीप में गया। वहाँ धन कमाया। और देश को आ रहा था कि मार्ग में ७ बार जहाज फटा और लकड़ी के सहारे किनारे पर लगा। राजगृही में आकर एक साधु से भेंट हुई।''

इस प्रकार परस्पर नाम ग्राम आदि में फर्क है। चारुदत्तचरित्र में तो और भी अधिक परिवर्तन है। उसमें मूरों का व्यापार करना, बलाका देश से ताम्रलिप्तनगर तक मूरों की गठरी सिर पर ले जाना और वहाँ वृषभध्वज सेठ के यहाँ रहकर भी मूरों का व्यापार करना आदि अनेक बातें ऐसी हैं जो अन्य कथाग्रन्थों में बिल्कुल ही नहीं हैं।

एक से एक बढ़कर सुन्दर शोभायुक्त थे। मन्दिरों के दरवाजों की कला तो देखते ही बनती थी। उन मन्दिरों पर स्वर्णकलश सूर्य की भाँति चमकते थे। उस नगर को देखकर चारुदत्त और उनके मामा अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा दोनों ने नगर में प्रवेश किया। उस नगर में सम्पत्तिशाली 'वृषभध्वज' नाम का नगरसेठ था। उसी के मकान पर दोनों गये और नगरसेठ को अपना सब हाल सुनाया। यह सुनकर सेठ को दया आ गयी और वह अपने मकान में उन दोनों को भीतर ले गया और प्रेमपूर्वक भोजन कराया। भोजन के बाद उन्हें वहीं रहने के लिये स्थान भी दिया। दोनों वही रहकर मूरों की दुकान करने लगे। कुछ दिनों तक उनने बहुत ही परिश्रमपूर्वक मूरों का व्यापार किया, जिससे चार पैसे उनके हाथ में हो गये।

कुछ अधिक द्रव्य संचय हो जाने के बाद उनने कपास का व्यापार प्रारम्भ किया। धीरे-धीरे उनका व्यापार बढ़ने लगा और उसी नगर में एक कंजन नाम का बंजारा था। वह अनेक प्रकार की वस्तुओं से बैल और गाड़ियाँ भरकर व्यापारार्थ दूसरे देश को जा रहा था। उस बंजारे के साथ बहुत से बड़े-बड़े व्यापारी थे। इसलिए जाने के पूर्व नगर भर में खूब चर्चा हो रही थी। तथा गाजे-बाजे के साथ जाने की तैयारियाँ हो रही थीं। चारुदत्त ने भी जब यह बात सुनी, तब उनने मामा से कहा कि यदि अपन भी इसके साथ हो जावें तो अच्छा है।

मामा ने भी इसमें अपनी सम्मति प्रगट की और उसी समय चार बैल खरीद लिये। उन पर कपास लादकर वे उस टांड़े के

साथ हो लिये। मार्ग में ठहरते-ठहरते सब व्यापारी आनन्दपूर्वक चले जाते थे, किन्तु दुर्भाग्यवश एक जंगल में भीलों ने व्यापारियों को लूट लिया। चारुदत्त और सिद्धार्थ के भी बैल लूट लिये गये तथा कपास में उन दुष्ट भीलों ने आग लगा दी। जिससे वे बहुत दुःखी हुए। यहाँ नीतिकार कहते हैं कि पुण्य के बिना उद्यम सिद्धिदायक नहीं होता है। इसलिए बुद्धिमानों को जिनेन्द्रोक्त मार्ग पर चलकर पुण्य सम्पादन करना चाहिए।

चारुदत्त के पास अब कुछ भी नहीं बचा था। फिर भी वे दोनों साहस करके ऊजड़ वन में भटकते-भटकते एक नदी के किनारे पहुँचे। वहाँ से उन्हें मलयागिरि पर्वत दिखाई दिया। वे दोनों साहस करके उस पर चढ़े। चढ़ते-चढ़ते उसकी चोटी तक पहुँच गये। वहाँ उन्हें रत्नों की एक खान दिखाई दी। उसे देखकर वे दोनों बहुत प्रसन्न हुए और रत्नों को लेकर नीचे उतरे। मार्ग वे दोनों अपने भाग्य को सराहते हुए तरह-तरह के विचार करते जा रहे थे कि कुछ दूर जाकर उन्हें भील मिले और उनने अनेक प्रकार का भय बताकर सब रत्न छीन लिये। जैसे-तैसे प्राण बचाकर चारुदत्त अपने मामा के साथ वहाँ से छूटे और अपने भाग्य को दोष देने लगे। फिर भी उनने साहस नहीं छोड़ा और उद्योग के लिये आगे बढ़े। मार्ग में भयंकर वन-अटवियों को पार करते हुए और णमोकार मंत्र का स्मरण करते हुए, वे दोनों आगे कुछ दिनों के बाद प्रियंगुबेला नगरी में पहुँचे। उस नगरी में प्रवेश करते ही उनका तमाम दुःख शोक मिट गया और नगरी की शोभा देखकर मन प्रसन्न हो गया।

वे दोनों बाजार की सुन्दर रचना देखते हुए और गगनचुम्बी महलों को देखते हुए, एक सेठ के मकान पर जा पहुँचे। सेठ का नाम सुरेन्द्रदत्त था। वह चारुदत्त के पिता भानुदत्त का मित्र था। चारुदत्त और सिद्धार्थ दोनों उसके पास गये और सुरेन्द्रदत्त सेठ से जुहार की और अपना सब हाल सुनाया। सुरेन्द्रदत्त सेठ ने भी यह समझकर कि चारुदत्त हमारे मित्र का पुत्र है, बहुत प्रेम प्रगट किया और सब कुशलक्षेम पूछकर उन्हें आश्वासन दिया। बाद में उन्हें स्नानादि कराके भोजन कराया और पहिनने को उत्तमोत्तम वस्त्र दिये तथा उन्हें अपने पास ही रखा।

कुछ दिनों के बाद सेठ सुरेन्द्रदत्त ने व्यापारार्थ विदेश जाने का निश्चय किया और विविध वस्तुओं से अनेक जलयंत्र (जहाज) भरवाये तथा साथ में सिपाही, योद्धा, सवारी, ईंधन, अन्न, पानी एवं सभी प्रकार की आवश्यक सामग्री साथ में ली। कारण कि इस बार बारह वर्ष के बाद लौटने का निश्चय था। शुभ मुहूर्त आने पर बड़ी धामधूम और गाजे-बाजे के साथ सुरेन्द्रदत्त सेठ के जहाज रवाना हुए। साथ में उसने चारुदत्त और सिद्धार्थ को भी लिवा लिया।

अनुकूल वायु होने से जहाज बड़े ही वेग के साथ चले जा रहे थे। पानी की जबरदस्त थपेड़ों से कभी-कभी जहाज डांवाडोल भी हो जाते थे। सभी लोग णमोकार मंत्र को जपते हुए अपनी यात्रा की कुशलता की अभिलाषा कर रहे थे। इस प्रकार चलते-चलते बहुत दिन हो गये और जहाज अनेक देशों को पार करते हुए सागर के किनारे एक द्वीप के पास पहुँचे। सभी लोगों ने

उतरकर वहाँ विश्राम किया। वह द्वीप व्यापार-प्रधान था। वहाँ पर सबने बड़ी ही कुशलता के साथ व्यापार किया। जो माल भरकर ले गये थे, उसे बेचा और वहाँ की बिक्री योग्य वस्तुएँ जहाज में भरीं। इस प्रकार व्यापार करते-करते वहाँ बारह वर्ष व्यतीत हो गये। चारुदत्त ने भी अपार द्रव्य कमाया और वहाँ की रत्नादि बहुमूल्य वस्तुएँ खरीदीं। बाद में सबने अपने देश जाने की तैयारी की और जहाज भरकर वहाँ से देश की ओर रवाना हुए।

★ ★ ★

सम्पत्ति और विपत्ति काल

यथैव पुष्पं प्रथमे विकाशे समेत्य पातुं मधुपाः पतन्ति।
एवं मनुष्यस्य विपत्तिकाले छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति॥

- मृच्छकटिकम्

यों तो चारुदत्त के जीवन में अनेक आपत्तियाँ आई थीं और उनको साहसपूर्वक सहन भी किया था। किन्तु मालूम होता है कि विपत्तियाँ उनके पीछे ही पड़ी थीं। अबकी बार चारुदत्त ने समझा था कि हमारा भाग्योदय हुआ है और खूब द्रव्य कमाया है, इसलिए बड़े ही आनन्द के साथ अपने देश में जाकर जीवन यात्रा करेंगे, किन्तु दैव को यह मंजूर नहीं था। समुद्र के मध्य में जहाज बड़े ही वेग के साथ चले ला रहे थे कि अनायास वायु का वेग बढ़ा, जिससे जहाज बहुत हिलने लगे। यह देखकर

लोगों में कुछ भय बढ़ गया।

किन्तु अनेक प्रकार की बातों से मन को सन्तुष्ट करके सब चले जा रहे थे। चारुदत्त भी अपने देशदर्शन की आशा लगाये, अनेक प्रकार के मंसूबे बाँधते हुए चले जा रहे थे। इतने में दैव रूठा, और एक महामच्छ ने चारुदत्त के जहाज में ठोकर लगायी या कहीं वह बुरी तरह टकरा गया, जिससे उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये। सारा सामान और सम्पत्ति समुद्र के पेट में समा गयी। चारों ओर हाहाकार मच गया। कोई किसी की सहायता नहीं कर सका; किन्तु सब अपनी-अपनी रक्षा का प्रबन्ध करने लगे। दैवयोग से चारुदत्त को लकड़ी का एक तख्ता मिल गया और सिद्धार्थ को भी एक लकड़ी मिल गयी। वे दोनों उसके सहारे बहते गये। कुछ समय के बाद सिद्धार्थ एक किनारे पर जा लगा और बाहर निकलकर चारुदत्त को देखने लगा। जब चारुदत्त कहीं पता नहीं लगा, तब उसने खूब विलाप किया और दुःखी होकर अपने नगर में गया। वहाँ पर सबसे अपनी सारी दुःख कथा कह सुनायी। जिसे सुनकर सब लोग दुःखी हुए। चारुदत्त के कुटुम्बीजनों की तथा चारुदत्त की माता और पत्नी के दुःख की तो कल्पना करना ही कठिन है। बेचारे सब अपने भाग्य को कोस कर रह गये।

उधर चारुदत्त भी तख्ते के सहारे समुद्र के किनारे आ लगे और मामा के न मिलने से बहुत दुःखी हुए। फिर भी धैर्य धारण करके वह आगे बढ़े और उदंवरावती नगर में पहुँचे। वहाँ मालूम हुआ कि सिद्धार्थ भी इसी प्रकार बचकर अपने नगर को गया है।

यह जानकर चारुदत्त को बहुत हर्ष हुआ और अपना दुःख बहुत कुछ भुला दिया। फिर भी अकेले होने से बुरा मालूम होता था। किन्तु चारुदत्त बहुत ही उद्यमी थे। उनने अपना साहस नहीं छोड़ा और अकेले ही सिन्धु देश की ओर चल दिये। कुछ दिनों बाद वह सिन्धु देश के संवर ग्राम में पहुँचे।

संवर ग्राम बहुत ही सुन्दर एवं समृद्धियुक्त था। उसे देखकर चारुदत्त को बहुत प्रसन्नता हुई। वहाँ पर चारुदत्त के पिता भानुदत्त सेठ की बहुत सम्पत्ति थी। करीब १८ करोड़ का भण्डार भरा था। उसका अधिकार चारुदत्त को मिल गया, जिससे वह पूर्ववत् समृद्धिशाली हो गये। उस अपार सम्पत्ति को पाकर चारुदत्त ने प्रसन्नतापूर्वक एक विशाल जिनमन्दिर बनवाया, उस पर स्वर्णकलश चढ़ाये और बहुमूल्य उपकरण बनवाकर अपनी सम्पत्ति को सफल किया। अब वह प्रतिदिन चार प्रकार का दान देते थे। सज्जनों और विद्वानों का सन्मान करते थे, दुःखित-दरिद्रियों को भी दान देते थे। जो भी उनके दरवाजे पर माँगता आता था, वह कभी खाली हाथ वापिस नहीं जाता था। इस प्रकार चारुदत्त ने अपनी धर्मनिष्ठा एवं दानशीलता के द्वारा बहुत ख्याति प्राप्त कर ली।

लोग चारुदत्त की नाना भाँति प्रशंसा करने लगे। कोई कहता था कि नगर में यह एक ही दानी है, कोई कहता था कि इस जैसा धर्मात्मा दूसरा नहीं है, कोई कहता था कि गुरुओं और विद्वानों का सन्मान करनेवाला यह एक ही पुरुष है और कोई कहता था कि वास्तव में चारुदत्त को जैसा धन मिला है, वैसा ही वह खर्च

करना भी जानता है। इस प्रकार चारों ओर से चारुदत्त की ख्याति होने लगी। वास्तव में थे भी वे इसके योग्य; वे गुणवान थे, दयावान थे, दानी थे; धर्मात्मा थे तथा क्षमा और सत्य के धारी थे। वे निरन्तर दीन-दुःखियों की रक्षा में तत्पर रहते थे और आनन्दपूर्वक अपना कालयापन करते थे।

★ ★ ★

संन्यासी के जाल में

प्रियवादीति विश्वस्य बकवृत्तेर्दुरात्मनः।
अधोऽधोऽनुचरो मुग्धः पततीति किमद्भुतम्॥

- हरिवंशपुराण

घूमते-घूमते चारुदत्त राजगृही नगरी में पहुँचे। और एक स्थान पर ठहर गये। दैवयोग से वहाँ एक दण्डी-संन्यासी मिला। उसका नाम विष्णुदत्त था। वह ऊपर से देखने में तो बड़ा सीधा सादा, भव्य और साधु पुरुष मालूम होता था, किन्तु उसका अन्तरंग बहुत काला था। चारुदत्त उसकी मीठी बातों में आ गये और अपनी सुख-दुःख की सब बातें उसे सुना दीं। सब हाल सुनकर संन्यासी बोला कि बेटा! तुम धन के लिये इतने चिन्तित क्यों हो? मेरे साथ आओ, मैं तुम्हें मालामाल कर दूँगा! एक जंगल में रस का कुआँ है। उसके रसायन से मनवांछित द्रव्य प्राप्त हो जाता है।

यह सुनकर चारुदत्त के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा और वह

बोले कि महात्मन्! चलिये, जल्दी चलिये और मुझे वह रसकूप बताइये। अथवा आप थोड़ासा रस यहीं ला दीजिए। आपकी जैसी इच्छा या आज्ञा हो सो मैं करने को तैयार हूँ। सच है, कौन धन-लम्पटी लोग दुर्जनों के द्वारा नहीं ठगाये जाते?* संन्यासी भी चारुदत्त को अपने जाल में फँसा हुआ जानकर जंगल में ले गया। वह निर्जन वन बहुत ही भयंकर था। थोड़ी दूर जाकर एक कुआँ दिखाई दिया। वे दोनों उसके बाँध पर बैठ गये। विष्णुदत्त ने चारुदत्त से कहा कि तुम्हें इस कुएँ में उतरना होगा, तब ही रस मिलेगा।

ऐसा कहकर उसने एक चौकी के चारों कोनों में रस्सी बाँधी और उस पर चारुदत्त को बैठाकर हाथ में एक तुम्बी दे दी और कहा कि बेटा! जब तू नीचे पहुँच जाये, तब इस तुम्बी में रस भर लेना और चौकी पर तुम्बी रख देना। फिर रस्सी को हिला देना, जिससे मैं रस्सी द्वारा चौकी ऊपर खींच लूँगा। उसके बाद मैं फिर चौकी नीचे डालूँगा, तब तू उस पर बैठ जाना। और मैं डोरी खींचकर तुझे निकाल लूँगा।

यह सुनकर चारुदत्त ने कहा कि साधो! जो आप कह रहे हैं, वह बिल्कुल ठीक है। मैं इसी प्रकार करूँगा। चारुदत्त ने अपने भोले स्वभाव के कारण कपटी साधु के कपट को नहीं समझा और चौकी पर बैठ गये। संन्यासी ने चौकी कुएँ में डाली और चारुदत्त को नीचे उतार दिया। कुएँ में एक खोह थी, उसी के

---

* चारुदत्तोऽवदत्तात कुरु त्वेवं मम ध्रुवम्।
धनाशालम्पटा लोके दुर्जनैः के न वंचिताः॥ – आराधना कथाकोश

आधार से चारुदत्त बैठ गये और तुम्बी में रस भरने लगे। वहीं बहुत दिन से एक आदमी पड़ा हुआ था। उसने चारुदत्त को रोका।* उस आदमी को देखकर चारुदत्त को भय मालूम हुआ। किन्तु उसने साहस और विश्वास दिलाते हुए कहा कि भाई! तुम डरो मत। मैं जानता हूँ कि तुम दुष्ट विष्णुदत्त साधु के जाल में फँस गये हो और उसी स्वार्थी ने तुम्हें कुएँ में उतारा है।

यह सुनकर चारुदत्त बोले कि महाशय! आप कौन हैं? कहाँ के रहनेवाले हैं? यहाँ आप कैसे आये? सब बातें सत्य-सत्य कहिये। तब वह आदमी बोला कि भाई! मेरी कथा सुनो। इन्द्रपुरी के समान शोभायुक्त उज्जैनीनगरी है। वहीं का रहनेवाला मैं एक वणिक पुत्र हूँ। हमारी आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी, इसलिए इस निर्धनता में जैसे-तैसे अपने दिन काटते थे।** एक दिन दैवयोग से उस दुष्ट तपस्वी से भेंट हुई। उसने मुझे मीठी-मीठी बातें सुनाकर अपने जाल में फँसा लिया। मैंने लोभ के

---

* हरिवंशपुराण में लिखा है कि उस आदमी ने यह कहकर चारुदत्त को रोका था कि यदि तुम जीना चाहते हो तो इस भयंकर रस का स्पर्श मत करो। इसके स्पर्श करने से क्षय की भाँति शरीर सूखने लगता है और अन्त में वह प्राण लेकर ही छोड़ता है। यथा :—

मा स्प्राक्षीस्त्वं रसं भद्र रौद्रं यदि जिजीविषुः।
स्पृशेत चेन्न जीवतं मुंचति क्षयरोगवत्॥ – हरिवंशपुराण

** आराधना कथाकोश में इस प्रकार लिखा है कि "मैं उज्जैनी का रहनेवाला हूँ। मेरा नाम धनदत्त है। मैं सिंहलद्वीप गया था, लौटते समय जहाज फट गया। धन-जन की भारी हानि हुई। जैसे-तैसे किनारे लगा कि – इस संन्यासी से भेंट हो गयी और इसके जाल में फँस गया। इसी प्रकार हरिवंशपुराण में भी है। किन्तु चारुदत्त चरित्र में इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं किया गया है। और न उस आदमी का नाम (धनदत्त) ही बताया है।

कारण उसकी दुष्टता को नहीं समझ पाया और उसे अपना हितैषी माना। वह मुझे इस जंगल में ले आया और एक तुम्बी देकर इस कुएँ में उतार दिया। मैंने रस से तुम्बी भरकर रस्सी से बँधी हुई चौकी पर रख दी। और उसने उसे खींच ली। फिर जब दूसरी बार रस्सी डाली, तब मैं उससे बँधी हुई चौकी पर बैठ गया। उसने आधी दूर तक खींचकर बीच में ही रस्सी काट डाली, जिससे मैं बुरी तरह आ गिरा और चोट लगने से पड़ा-पड़ा कराहता रहा। वह पापी संन्यासी तो रस लेकर चला गया किन्तु मैं यहाँ इस क्षयकारी रस के कारण अर्धदग्ध होकर मर रहा हूँ। भाई! अब मैं अधिक समय तक नहीं जी सकता।

चारुदत्त ने यह रोमांचकारी बातें सुनकर निश्चय किया कि मैं भी इसी प्रकार उस पापी के कपटजाल में फँस गया हूँ। अब मैं यहाँ से कैसे निकलूँगा? यह विचार कर चारुदत्त ने उस आदमी से कहा कि अब तुम मुझे कोई उपाय बताओ मुझे क्या करना चाहिए? तब वह मनुष्य बोला कि इस पापी के पंजे से बचने का एकमात्र यही उपाय है कि आप रस की तुम्बी भरकर इस चौकी पर रख दीजिए। साधु इसे खींच लेगा। और फिर जब दूसरी बार चौकी डाले तब आप स्वयं उस पर न बैठकर कुछ पत्थर रख देना। संन्यासी आपको बैठा जानकर रस्सी खींचेगा, और बीच में से ही काट डालेगा। बस, आपके प्राण बच जायेंगे। ऊपर से पत्थर गिरेंगे, इसलिए उनसे बचने के लिये एक बगल में बैठ जाना चाहिए।

चारुदत्त को यह सलाह बहुत ही योग्य मालूम हुई और

उनने वैसा ही किया। इस भय से कि यदि रस की तुम्बी भरकर नहीं देंगे तो वह संन्यासी ऊपर से पत्थर आदि मारकर हमें सतायेगा, इसलिए पहले तुम्बी भरकर चौकी पर रख दी और रस्सी तान दी। संन्यासी ने अपना मतलब सिद्ध होता जानकर रस्सी खींच ली और रस की तुम्बी लेकर दूसरी बार चौकी कुएँ में डाली, तब चारुदत्त ने उस पर स्वयं न बैठकर कुछ पत्थर रख दिये और रस्सा हिलाकर स्वयं एक तरफ खड़े हो गये। संन्यासी ने रस्सी खींची और आधी दूर ऊपर आने पर उसे बीच से ही काट डाली। इसलिए चौकी पत्थरोंसहित कुएँ में आ गिरी और संन्यासी अपना मतलब सिद्ध हुआ जानकर तुम्बी ले अपने स्थान पर चला गया।

उधर आपत्तिग्रस्त चारुदत्त जिनेन्द्र भगवान का नाम स्मरण करते हुए विचारने लगे कि कर्म बहुत बलवान है। उसका जब जैसा उदय आता है, तब जीव को वह सहन करना ही पड़ता है। इसलिए अब दुःख, शोक और चिन्ता करना तो व्यर्थ है। हाँ, कुछ उपाय अवश्य सोचना चाहिए। यों विचार कर चारुदत्त ने उस मनुष्य (धनदत्त) से कहा कि क्या इस कुएँ से निकलने का कोई उपाय है ?* तब धनदत्त ने कहा कि एक उपाय मेरे ध्यान में है अवश्य, किन्तु वह कठिन एवं भयावह है। यहाँ एक गोह प्रतिदिन दोपहरी** में रस पीने के लिये आती है। आप उसकी

* आराधना कथाकोश में लिखा है कि निकलने का उपाय पूछने के पूर्व चारुदत्त ने धनदत्त को पंच नमस्कार मंत्र देकर और संन्यास धारण कराया था। फिर उपाय पूछा था।

** आराधना कथाकोश में लिखा है कि गोह सबेरे आती है। यथा — ''अघ पीत्वा रसं गोधा गता, प्रातः समेष्यति।''

पूँछ पकड़ लेना, वह आपको खींचकर ऊपर तक ले जायेगी। इसके सिवाय दूसरा कोई भी उपाय नहीं है।

चारुदत्त ने पूछा कि आप जिस प्रकार से मुझे निकलने का उपाय बता रहा हैं, उसी प्रकार आप क्यों नहीं निकले? और अभी तक यहाँ पड़े-पड़े क्यों दुःख उठा रहे हो? तब धनदत्त ने कहा कि मुझे भयंकर चोट लगी है, इसलिए गोह की पूँछ पकड़कर निकलने का मुझमें शक्ति नहीं है। यह सुनकर चारुदत्त कुछ विचार में पड़ गये और सोचने लगे कि गोह कब आती है और मैं कब निकल पाता हूँ।

इतने में धनदत्त बोला कि भाई! यह निश्चय समझो कि अब थोड़ी ही देर में मेरे प्राण निकलनेवाले हैं। मेरा चित्त घबड़ा रहा है। अब मैं क्या करूँ? क्या मेरी मौत इसी प्रकार होगी? होनहार बलवान है। लोभ के कारण मैं यहाँ आकर फँसा हूँ। उसी का यह फल भोग रहा हूँ।

यह सुनकर चारुदत्त ने उसे ढाँढस बँधाया और समझाया कि हे भाई! अब तुम घबराओ नहीं, जो होना है, सो होकर ही रहेगा। व्यर्थ ही मोह और विलाप करने से क्या लाभ है। अब तुम संसार से मोह का त्याग करके धर्म में अपना चित्त स्थिर करो। अन्त समय में धर्म ही इस जीव का सहायक है। बाह्य संकल्प विकल्प दुर्गति के देनेवाले हैं, इसलिए सब मोहजाल को त्यागकर पंच नमस्कार मन्त्र का उच्चारण करो। उसी का विचार करो और उसी का मनन करो। इस णमोकार मन्त्र में (णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो

उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं) पाँच पद, पैंतीस अक्षर और अट्ठावन मात्रायें हैं। तुम इनका ही ध्यान करो। इस प्रकार मन्त्र और उसकी महिमा आदि सुनकर धनदत्त के मन में प्रसन्नता हुई और वह श्रद्धापूर्वक णमोकार मन्त्र जपने लगा।

इसके बाद चारुदत्त ने उसका मरण निकट जानकर स्वर्ग –मोक्षदायी जैनधर्म तथा संन्यास धारण कराया और जैनधर्म का उपदेश दिया। इस धर्म निमित्त को पाकर धनदत्त के परिणाम बहुत शुद्ध हो गये और वह णमोकार मंत्र का जाप करता हुआ शरीर त्यागकर प्रथम स्वर्ग में देव हुआ।* सच है, इस णमोकार मन्त्र के प्रभाव से क्या नहीं हो सकता? यह पाप पंक को धोकर स्वर्ग और मोक्षपद का देनेवाला है। इसलिए भव्य जीवों को इसे सदा जपना चाहिए। इस मन्त्र के प्रभाव से ही जीव सर्वार्थसिद्धि जाता है और इसी के प्रभाव से समस्त ऋद्धिसिद्धि प्राप्त होती हैं। इस मन्त्र के प्रभाव से देवगण सेवा करते हैं। और इससे संसार के दु:खों का नाश हो जाता है। इसलिए शुभगति का करनेवाला और दुर्गति का नाश करनेवाला पंच नमस्कार मन्त्र सदा ध्यानेयोग्य है। यही पंच नमस्कार मन्त्र जगत में सारभूत है।

उधर चारुदत्त कुएँ से निकलने की चिन्ता में बैठे हुए थे कि इतने में गोह आई और वह रस पीकर वापिस जाने लगी। चारुदत्त ने तुरन्त ही उसकी पूंछ पकड़ ली और उसके साथ ऊपर को खींचते हुए चले गए। किन्तु लगभग एक हाथ निकलना ही

* हरिवंशपुराण और आराधना कथाकोश में धनदत्त के मरण का और प्रथम स्वर्ग में जाने आदि का कोई उल्लेख नहीं है।

बाकी रहा था कि वह गोह पास के एक बड़े बिल में घुस गयी। चारुदत्त भी उसी के साथ भीतर चले गये। किन्तु जब वह गोह एक छोटे छिद्र से ऊपर जाने लगी, तब चारुदत्त घबराये और उनने विचार किया कि इस छोटे छिद्र में से गोह तो ऊपर निकल जायेगी, किन्तु मैं इसमें से कैसे निकल सकूँगा। मेरे तो इसमें प्राण ही निकल जायेंगे। यह विचार कर उनने उस गोह की पूंछ छोड़ दी और वहीं रह गये और गोह ऊपर निकल गयी।

★ ★ ★

आपत्तियों पर आपत्तियाँ

एक्कस्स जाव न अंतं जामि दुक्खस्स पावकम्मे हं।
तावच्चिय गरुययरं बिइयंतु निरूवियं विहिणा॥

– प्राकृत सुभाषितसंग्रहः

जब चारुदत्त को बाहर निकलने का मार्ग नहीं दिखा, तब वे जिनेन्द्र भगवान का स्मरण करते हुए बारह भावनाओं का चिन्तवन करने लगे। दैवयोग से उसी समय बकरियों का समूह उस तरफ वन में चरने के लिये आया और उस कुएँ के पास से निकल गया। किन्तु एक बकरी का पैर उस बिल में घुस गया, जिसके नीचे चारुदत्त बैठे हुए थे। चारुदत्त ने मौका देखकर उस बकरी का पैर तुरन्त ही पकड़ लिया, जिससे वह बकरी बड़े जोर से मिमयाने लगी। ग्वाला बकरी की आवाज सुनकर उस तरफ आया और बकरी का पैर निकालने के लिये उस बिल को खोदने

लगा। इतने में भीतर से चारुदत्त बोले कि तनिक धीरे–धीरे खोदना!

बिल में से मनुष्य की आवाज सुनकर ग्वाला आश्चर्यचकित हो गया और बोला कि इस बिल में कौन बोल रहा है ? तू कोई मनुष्य है, देव है, या भूत–प्रेत है ? तब चारुदत्त ने कहा कि भाई ! मैं मनुष्य हूँ, दया करके मुझे यहाँ से शीघ्र ही निकालो। ग्वाला को उसे वास्तव में मनुष्य जानकर कुछ शान्ति हुई और उसने धीरे–धीरे बिल खोदकर चारुदत्त को बाहर निकाल लिया।

चारुदत्त बिल में से निकलकर आगे को रवाना हो गए। मार्ग में उन्हें एक महाभयंकर जंगल मिला। उसे पार करते हुए चारुदत्त मन में जिनेन्द्र भगवान का नामस्मरण करते हुए चले जा रहे थे। कहीं भयानक सुअर, सियाल, चीता और शेर फिर रहे थे, तो कहीं बन्दर, रीछ, भैंसा और लंगूर फिरते थे। कहीं मत्त हाथी झूमते फिरते थे तो कहीं शार्दूल सिंह, अजगर और ऐसे ही भयंकर प्राणी दिखाई देते थे। फिर भी चारुदत्त साहस करके आगे बढ़ते ही चले गये।

आगे चलकर उन्हें एक भयानक आरण भैंसा मिला। वह काल के समान विकराल मालूम होता था। चारुदत्त को देखकर वह मारने को दौड़ा। चारुदत्त भी उसे अपनी ओर दौड़ता हुआ देखकर भागे। बहुत दूर तक भैंसा ने चारुदत्त का पीछा नहीं छोड़ा। आगे–आगे चारुदत्त अपने प्राण लिये भाग रहे थे, पीछे–पीछे वह भयंकर भैंसा दौड़ रहा था। भागते–भागते चारुदत्त को पास में ही पर्वत की एक गुफा दिखाई दी और वे उसमें घुस गए। किन्तु दैव तो वहाँ भी साथ ही था।

गुफा के दरवाजे पर ही एक काल समान विकराल भुजंग सो रहा था। उसकी परवाह न करके मात्र भैंसे से बचने के लिये चारुदत्त उस सर्प के फण पर पैर रखकर गुफा के भीतर जा कूदे। चारुदत्त तो उस कन्दरा में घुस गये, किन्तु पैर पड़ जाने से वह साँप जाग उठा और क्रोध में ऐसे जलने लगा जैसे अग्नि में घी होता गया हो! इतने में उसे सामने ही भैंसा दिखाई दिया। उसे देखकर अजगर-साँप ने समझा कि इसी ने मेरे सिर पर पैर रखा है। बस, फिर क्या था? अजगर के क्रोध का ठिकाना नहीं रहा, और उस भैंसे के साथ युद्ध करने लगा।

उधर चारुदत्त गुफा के भीतर से अजगर और भैंसा का युद्ध देखने लगे। भैंसा की भयंकर आवाज और अजगर की फुंकार हृदय को हिला देती थी। बड़ी देर तक वे दोनों लड़ते रहे, किन्तु न कोई हारा और न कोई जीता। उन दोनों का युद्ध जमा हुआ देख मौका पाकर चारुदत्त वहाँ से भाग खड़े हुए।*

जब वह जंगल में बहुत दूर पहुँच गये, तब उन्हें कुछ शान्ति मिली। लेकिन निर्जन वन की भयानकता अच्छे-अच्छे वीरों का हृदय दहला देनेवाली थी। फिर भी चारुदत्त णमोकार मन्त्र का उच्चारण करते हुए साहसपूर्वक आगे बढ़ते गये। दैवयोग से थोड़ी दूर जाने पर दो मस्त भैंसा मिले और वे चारुदत्त को मारने के लिये दौड़े। चारुदत्त भी अपने प्राण बचाकर वहाँ से भागे और भागते-भोगते मौका देखकर एक वृक्ष पर चढ़ गये। वह वृक्ष बहुत बड़ा और ऊँचा था, इसलिए चारुदत्त की रक्षा हो गई। वह

* आराधना कथाकोश में यह वर्णन नहीं है। किन्तु हरिवंशपुराण में इसी प्रकार है।

भैंसा वृक्ष के नीचे आये और झींकझांककर वहाँ से चले गये।* उन्हें गया हुआ देखकर चारुदत्त वृक्ष के नीचे उतरे और आगे को बढ़े। चलते-चलते मार्ग में एक नदी मिली। उसके किनारे पर चारुदत्त विश्राम करने के लिये ठहर गये।

★ ★ ★

धन प्राप्ति का प्रयत्न

जस्सत्थो तस्स सुहं, जस्सत्थो पण्डिओ य सो लोए।
जस्सत्थो सो गुरुओ, अत्थविहूणो या लहुओ य॥

- प्राकृत सुभाषितसंग्रहः

उधर रुद्रदत्त चारुदत्त को ढूँढ़ने के लिये देशदेशान्तरों में फिर रहे थे। साथ में चारुदत्त के पाँच मित्र हरिसिख, गोमुख, बाराहक, परतप और मरुभूत भी थे। वे सब घूमते हुए उसी नदी के किनारे आ गये, जहाँ चारुदत्त विश्राम कर रहे थे। उन्हें देखकर सबके हर्ष का पार नहीं रहा।** चारुदत्त भी बड़े प्रेम के साथ सबसे मिले। सबकी आँखें आनन्द के आँसुओं से भर आई! परस्पर कुशल समाचार पूछे। चारुदत्त ने अपनी सब कथा सुनाई और घर के कुशल समाचार पूछे। इस प्रकार क्षेमकुशल की बातों के बाद सबने उसी नदी में स्नान किया और शान्तिपूर्वक

* यह कथन हरिवंशपुराण या आराधना कथाकोश में नहीं है।

** हरिवंशपुराण और आराधना कथाकोश में मात्र रुद्रदत्त से मिलने की ही बात है। साथ में पाँच मित्रों के आने का उल्लेख नहीं है।

भोजनपान किया, उसके बाद सातों वीर वहाँ से निकटवर्ती एक नगर की तरफ* चल दिए। उस नगर का नाम 'श्रीपुर' था। वह नगर बहुत समृद्धि और शोभायुक्त था। वहाँ एक धनसम्पन्न प्रियदत्त नाम का सेठ रहता था। वह भानुदत्त का मित्र था। वे सब उसी के यहाँ गये और अपना सारा हाल उसे सुनाया। प्रियदत्त ने सहानुभूति दिखाते हुए बहुत ही प्रेम प्रदर्शित किया और सबका आदर-सन्मान करके भोजन कराया। तथा उनको व्यापार के लिये कुछ द्रव्य भी दिया।*

वे सब द्रव्य लेकर बाजार में गये और वहाँ पर व्यापार के लिये काँच की चूड़ियाँ खरीदीं। फिर उनने चूड़ियों की गठरी बाँधकर सिर पर रखीं और उन्हें बेचने के लिये गान्धार देश में गये, वहाँ पर चूड़ियाँ बेचकर कुछ द्रव्य एकत्रित किया। एक दिन रुद्रदत्त को एक आदमी मिला और पूछे लगा कि आप कहाँ के रहनेवाले हैं? ऐसा नीचा व्यवसाय आप क्यों करते हैं? आपको तो यह शोभा नहीं देता। आप अत्यन्त रूपवान, गुणवान, कुलीन एवं सज्जन पुरुष मालूम होते हैं, फिर क्या कारण है कि आप इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं और यह व्यवसाय करते हैं? कृपया समस्त हाल मुझसे कहिये। यदि मुझसे बन सका तो मैं आपको उचित मार्ग बताऊँगा।

उस आदमी की बातें सुनकर रुद्रदत्त को कुछ आश्वासन मिला 'डूबते को तिनके का सहारा' की भाँति उसे ही अपना

* यह उल्लेख हरिवंशपुराण या आराधना कथाकोश में नहीं है तथा इसके आगे भी बहुत सा वर्णन इन कथा ग्रन्थों में नहीं है।

सहायक समझकर अपनी सारी कथा आद्योपान्त कह सुनाई। जब उस आदमी ने उनकी गमकहनी सुनी, तब उसे दया आ गयी और वह बोला, आप इस व्यापार को छोड़ दीजिए। मैं आपको धन प्राप्ति का एक उपाय बतलाता हूँ।

यहाँ से थोड़ी दूर एक बहुत ही ऊँचा पर्वत है। वहाँ पहुँचने के लिये कोई सुगम मार्ग नहीं है, किन्तु बहुत ही सकरी (छोटी तंग) एक गली है। उस गली में मात्र बकरा ही चल सकता है, दूसरे प्राणी या मनुष्य का जाना कठिन है। इसलिए यदि बकरों पर सवार होकर वहाँ जाया जाये तो धीरे-धीरे पर्वत पर पहुँच सकते हैं। वहाँ पहुँचने पर फिर आगे जाने के लिये एक और उपाय करना होगा। वह यह है कि बकरे को मारकर उसकी मसक बनानी होगी। और एक-एक छुरी लेकर उसमें स्वयं बैठकर उसका मुँह सिल देना होगा और स्थिर होकर कुछ समय उसी में बैठना होगा।

वहाँ रत्नद्वीप से भेरुंड पक्षी आते हैं। जब वे वहाँ आकर उस मसक को देखेंगे, तब उसे माँस-पिण्ड समझकर अपनी चोंच में दबाकर उठा ले जायेंगे और वहाँ पृथ्वी पर रखकर खाने का प्रयत्न करेंगे। उसी समय अपनी छुरी से मसक का मुँह फाड़ना होगा। ऐसा करने से जब पक्षी उसमें से मनुष्य को निकलता हुआ देखेंगे तब वे भयभीत होकर वहाँ से भाग जायेंगे। इस प्रकार रत्नद्वीप में पहुँचकर जितनी इच्छा हो, उतने रत्नादिक वहाँ से ला सकेंगे।

यह सुनकर रुद्रदत्त के हर्ष का पार नहीं रहा और उसने

विचार किया रत्नद्वीप में जाने की बात चारुदत्त से करना चाहिए। किन्तु यदि उससे बकरा मारने आदि की बात कहीं जायेगी, तो वह कदापि इसके लिये तैयार नहीं होगा। इसलिए कोई दूसरा बहाना बनाकर उसे तैयार करना चाहिए। चारुदत्त बहुत ही धार्मिक विचार का पुरुष है। इसलिए यदि उससे यह कहा जाये कि रत्नद्वीप में बहुत सुन्दर जिन मन्दिर हैं, उनके दर्शन करना चाहिए तो वह अवश्य ही चलने को तैयार हो जायेगा।

यह विचार कर रुद्रदत्त चारुदत्त के पास गया और बोला कि भाई! यहाँ से थोड़ी ही दूर एक पर्वत के ऊपर बहुत ही मनोहर जिन चैत्यालय है। वहाँ की यात्रा जीवन को सफल करनेवाली है। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो अपन सब वहाँ चलें और दर्शन करके अपने जीवन को सार्थक बनावें। चारुदत्त को तो कुछ खबर ही नहीं थी कि इनके मन में क्या कपट है, इसलिए वह शीघ्र ही तैयार हो गये और बोले कि काकाजी! ऐसा सुन्दर सुयोग क्यों छोड़ना चाहिए? चलिये, अभी ही चलकर वन्दना करें।

चारुदत्त की स्वीकृति और उत्कृण्ठा देखकर रुद्रदत्त उसी समय सात बकरे ले आया* और उन पर सातों आदमी चढ़कर पर्वत की ओर चल दिये। जब वे लोग तलहटी तक पहुँचे तब सब ही ठहर गये और पर्वत पर चढ़ने का मार्ग देखने लगे। वह मार्ग मात्र चार अंगुल ही चौड़ा था। इतना ही नहीं, किन्तु उसके

* हरिवंशपुराण और कथाकोश में मात्र दो बकरे लाने का ही कथन है। कारण कि वहाँ मात्र रुद्रदत्त और चारुदत्त का ही मिलाप बताया है।

दोनों ओर पाताल के समान नीचाई थी और कहीं पर भी ठहरने या टिक रहने के लिये कोई सहारा तक नहीं था।

उस भयंकर और संकुचित मार्ग को देखकर चारुदत्त बोले कि आप सब लोग यहीं ठहरिये और मैं अकेला ही जाकर इस मार्ग को देखे आता हूँ कि यह कहाँ तक इसी प्रकार छोटा और भयकारी है। जब तक मैं वापिस न आ जाऊँ, तब तक आप यहीं रहें। यह सुनकर छहों मनुष्य बोले कि नहीं, यह नहीं हो सकता। आप ही यहाँ ठहरिये और हम जाकर मार्ग देखे आते हैं। यह काम कुछ अकेले आपका तो है ही नहीं, यह तो सबका काम है। फिर आप ही क्यों जानबूझकर आपत्ति में फँसने जाते हैं? यदि दैवयोग से हम गिर भी गये तो कोई बात नहीं, किन्तु आपका जीवन विशेष मूल्यवान है। आपके द्वारा अनेकों का उपकार हुआ है और होगा। आप विशेष पुण्यशाली एवं धर्मात्मा हैं। इसलिए हम लोगों की अपेक्षा आपका जीना विशेष आवश्यक है।

यह सुनकर चारुदत्त बोले कि आप लोग यह क्या कह रहे हैं? मैं तो आप सबका सेवक हूँ और आप हमारे मान्य हैं, बड़े हैं, एवं आदरणीय हैं। और फिर, यदि मैं अकेला मर भी गया तो क्या बिगड़ जायेगा? किन्तु आप छह सज्जनों का जीवन बचना चाहिए। इसलिए अब आप आगे कुछ न कहें, मैं ही अकेला जाकर मार्ग देखे आता हूँ।

ऐसा कहकर चारुदत्त बकरे पर चढ़कर उस संकुचित मार्ग को देखने के लिये चल दिये। वह मार्ग मात्र चार अंगुल चौड़ा

था और दोनों ओर बहुत ही गहराई थी। इसलिए उस मार्ग में जाते हुए ऐसा भय लगता था कि यदि बकरे का पैर तनिक भी इधर से उधर हुआ कि नीचे जा गिरेंगे और फिर एक भी हड्डी तक का पता नहीं चलेगा। फिर भी चारुदत्त साहसपूर्वक णमोकार मन्त्र को जपते हुए धीरे-धीरे आगे बढ़ते गये। मार्ग में उनका न तो कोई सहारा था और न किसी दूसरे मनुष्य के दर्शन तक होते थे।

बहुत दूर पहुँचने पर एक सुन्दर स्थान दिखाई दिया। उसे देखकर चारुदत्त को बहुत प्रसन्नता हुई और विचार किया कि अब लौटकर सबको बुला लाना चाहिए। यों विचार कर उस स्थान से अपने बकरे को लौटाया और नीचे की ओर चल दिये। बकरा धीरे-धीरे नीचे उतर रहा था, इसलिए बहुत समय लग गया। उधर रुद्रदत्त आदि पर्वत की तलहटी में बैठे-बैठे सोच रहे थे कि अभी तक चारुदत्त क्यों नहीं आया। उसे गये हुए बहुत देर हो गयी। अब तक तो लौट ही आना चाहिए था। मार्ग में उसे कहीं कोई आपत्ति तो नहीं आ गई? जो हो, अब हम सबको उसी ओर चलना चाहिए। मार्ग में वह कहीं न कहीं तो मिल ही जायेगा।

यह विचार करके वे सब अपने-अपने बकरे पर चढ़कर उसी संकुचित मार्ग से एक के पीछे एक होकर चल दिए। इधर यह ऊपर लोग चले जा रहे थे और उधर चारुदत्त नीचे वापिस आ रहे थे। इसलिए वे बीच मार्ग में आमने-सामने मिल गए। चारुदत्त को देखकर छहों मनुष्य बहुत प्रसन्न हुए, किन्तु चारुदत्त

को अत्यन्त खेद हुआ और वह बोले कि आप लोगों ने यह बड़ी मूर्खता की है। मैंने तो कहा था कि जब तक मैं वापिस न आ जाऊँ, तब तक आप लोग वहीं ठहरें। फिर आप सब मेरे आने के पूर्व ही वहाँ से क्यों चल दिये? अब हम सब यहाँ बुरी तरह फँस गए हैं। यह मार्ग बहुत ही तंग है। इसलिए न तो मैं पीछे की ओर फिर सकता हूँ और न आप लोग ही फिर सकते हैं। तथा एक–दूसरे की बगल में से निकल जायें यह तो एक प्रकार से असम्भव ही है। यदि मैं फिरता हूँ तो मेरा मरण होगा और यदि आप लोग फिरेंगे तो आप सब नीचे जा गिरेंगे। अब आप ही बताइये कि हम सबको क्या करना चाहिए?

यह सुनकर वे छहों मित्र बोले कि इसमें हमारा क्या अपराध है? आपने ही तो वापिस आने में इतना विलम्ब किया, इसलिए हम सब दुःखी एवं चिन्तित हो उठे और आपको देखने के लिये चल दिये। उसका यह परिणाम आया है कि हम सब आपत्ति में फँस गये हैं। अस्तु, जो होना था सो हो गया। अब आप हमारी एक बात स्वीकार करिये। वह यह है कि हम सब तो भाग्यहीन हैं और आप हैं परोपकारी, धर्मात्मा एवं भाग्यशाली महापुरुष। इसलिए यदि हम लोगों की मृत्यु हो जाये तो कोई चिन्ता नहीं, किन्तु आप चिरंजीवी रहें, यही हमारी भावना है। इसलिए आप तो अब नहीं लौटिये, लेकिन हम ही लौटते हैं। इस प्रकार लौटते हुए मरण या अन्य कोई आपत्ति आयेगी तो उसे सहने के लिये हम तैयार है।

तब चारुदत्त ने कहा कि मित्रो! आप यह क्या कह रहे हैं?

तनिक विचार तो करिये, कि एक का मरना अच्छा है या छह का? मेरे अकेले के लिये आप छह का मरण हो, यह मुझे या किसी को भी इष्ट नहीं हो सकता। इसलिए मुझे ही लौटने दीजिए। यदि मेरा मरण हो जाये तो कोई चिन्ता की बात नहीं है, किन्तु आप सबकी जीवन–रक्षा होनी चाहिए। अब पश्चाताप या सोच–विचार करने से कोई लाभ नहीं है। भवितव्य बड़ा बलवान होता है, इसलिए जो होना था, सो हो गया और जो होना है, वह होकर ही रहेगा। इसमें हम या आप क्या कर सकते हैं?

समस्त संसार दैवानुसार चक्कर लगा रहा है। मनुष्य जैसा जो शुभ या अशुभकर्म उपार्जन करता है, उसी प्रकार उसे उसका फल भोगना पड़ता है। कर्म के बिना न तो कोई कुछ दे सकता है और न ले सकता है। जिस जीव का जैसा कर्मोदय होता है, उसे वैसे ही सहायक निमित्त भी मिलते हैं। यद्यपि सुख–दुःख देनेवाला कोई वास्तव में मालूम नहीं पड़ता, फिर भी इतना तो निश्चित है कि यह सब विधि का ही विधान है। यह जीव चारों गतियों में भ्रमण करता है, फिर भी पुण्य और पाप तो उसके साथ ही लगा रहता है। भवितव्य को कोई भी नहीं मिटा सकता। कर्मोदय के अनुसार इस जीव को मन, वचन, काय से सुख–दुःख भोगना पड़ते हैं।

इस प्रकार अनेक तरह से समझाकर चारुदत्त ने उन सबको धैर्य बँधाया और णमोकार मन्त्र का जप करके धीरे से अपने एक पैर की अँगुली मार्ग में टिकाकर और सम्पूर्ण शक्ति से अपने शरीर को साधकर अपने बकरे को बड़ी ही सावधानी से फिरा

लिया और ऊपर की ओर चल दिये। उनके पीछे–पीछे वे छहों मित्र भी हो लिये। थोड़ी देर बाद वे सब पहाड़ के ऊपर पहुँच गये और आनन्दपूर्वक वहाँ ठहर गये।*

★ ★ ★

बकरों का वध

कृत्वा समुद्रमुदकोच्छ्रयमात्रशेषं,
दत्तानि येन हि धनान्यनपेक्षितानि।
स श्रेयसां कथमिंबकनिधिर्महात्मा,
पापं करिष्यति धनार्थमवैरिजुष्टम्॥

– **मृच्छकटिकन्।**

कुछ समय के बाद चारुदत्त ने रुद्रदत्त से कहा कि जिन मन्दिर कहाँ है ? चलिये, उसका पता लगाकर दर्शन करने चलें। तब रुद्रदत्त ने विचार किया कि यदि चारुदत्त से सत्य बात कह दी जायेगी कि इन बकरों को मारकर अन्य द्वीप में जाना है तो वह बकरे को नहीं मारने देगा। कारण कि वह धर्मात्मा है। वह धन की इच्छा से बकरे का वध करना कभी भी पसन्द नहीं करेगा। इतना ही नहीं किन्तु यदि उसे बकरे के वध की बात भी

---

* पृष्ठ ७३ से यहाँ तक का वर्णन हरिवंशपुराण या आराधना कथाकोश में नहीं है। वहाँ तो मात्र चारुदत्त और रुद्रदत्त इन दो का ही जिक्र है। रुद्रदत्त ने दोनों बकरों को मारकर मसकें बनायी थीं। और दोनों बैठकर पक्षियों द्वारा रत्नद्वीप गये थे। मगर रुद्रदत्त को पक्षी ने बीच में ही कहीं पटक दिया और चारुदत्त को रत्नद्वीप में ले गये। मार्ग में लौटने आदि का कोई कथन नहीं है।

मालूम हो जायेगी तो वह बहुत दुःखी होगा। इसलिए कोई दूसरा उपाय सोचना चाहिए।

यों विचारकर रुद्रदत्त ने जिनमन्दिर की बात को टाल दिया और कहा कि कुमार! जिनमन्दिर यहाँ से कुछ दूरी पर है। वहाँ तक जाने की अभी मुझमें शक्ति नहीं है। संकुचित मार्ग से आने के कारण मेरा शरीर बहुत शिथिल हो गया है। इसलिए थोड़ी देर आराम कर लेना चाहिए। कुछ निद्रा लेने के बाद हम सब जिनमन्दिर के दर्शन करने चलेंगे। चारुदत्त ने कपटजाल को न पहिचानकर काका की बात स्वीकार कर ली और सातों मित्र एक वृक्ष के नीचे सो गये।

चारुदत्त के मन में कोई कपट नहीं था, इसलिए वह तो वास्तव में ही सो गये थे, किन्तु बाकी के छहों मनुष्य कपटी एवं पापात्मा थे, इसलिए सोने का बहाना बनाकर पड़े रहे। जब उन्हें मालूम हुआ कि चारुदत्त सो गया है, तब वे सब उठे और अपने-अपने बकरों को मार डाला। उन दुष्टों को अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये या द्रव्य लोभ के सामने बकरों की हत्या करते समय तनिक भी दया नहीं आई।

वास्तव में जो मनुष्य लोभ से अन्धा होता है। वह पाप-पुण्य का विचार ही नहीं करता। लोभांध के हृदय में दया लेश मात्र भी नहीं होती और वह सदा कुकर्म करने में तत्पर रहता है। लोभी के न तो कोई क्रियाकर्म का विचार होता है और न उसके बुद्धि विवेक ही रहता है। लोभी मनुष्य को धर्मध्यान का तो विचार ही नहीं आता। और न उसे सत्य संयमादि का ही ज्ञान रहता है। इसी

प्रकार लोभांध होकर ही रुद्रदत्त आदि ने उन विचारे निर्दोष बकरों का वध करते हुए तनिक भी दया नहीं खाई।

उस दुष्टात्मा रुद्रदत्त ने ६ बकरों का वध होने के बाद चारुदत्त के बकरे को मारने का विचार किया। और हाथ में छुरी लेकर उसके गले पर चला दी। वह पापी धीरे-धीरे छुरी चला रहा था और बकरा जोर-जोर से मिमया रहा था। जब आधा गला कट चुका, तब उस बकरे की आवाज सुनकर चारुदत्त की नींद खुल गयी और देखा तो ६ बकरे मरे पड़े हैं, सातवाँ अधमरा हो चुका है। उस समय चारुदत्त के क्रोध का ठिकाना नहीं रहा। उनने तुरन्त ही रुद्रदत्त के हाथ से छुरी छीनकर फेंक दी। और उसकी इस दुष्टता की निन्दा करने लगे।

उधर चारुदत्त के बकरे के प्राण निकल रहे थे। वह बेचारा कातर दृष्टि से चारुदत्त की ओर टगर-टगर देख रहा था। उसे देखकर चारुदत्त की आँखों में आँसू आ गये और हृदय भर आया, किन्तु उसे बचाने का उनके पास कोई उपाय नहीं था। फिर भी उसकी शान्ति के साथ मृत्यु हो और उसे सुगति प्राप्त हो, इसलिए उसे पंच नमस्कार मन्त्र सुनाया और संन्यास धारण कराया। वास्तव में जो धर्मात्मा जिनेन्द्र भगवान के उपदेश का रहस्य समझनेवाले हैं, उनका जीवन परोपकार के लिये ही होता है।* चारुदत्त द्वारा प्रदत्त णमोकार मन्त्र के प्रभाव से वह बकरा

* चारुदत्तस्तदा तस्मै छागायोच्चैः सुखप्रदान्।
सारपंचनमस्कारान् संन्यासं च प्रदत्तवान्॥
धर्मिणो येऽत्र वर्तन्ते ज्ञातश्रीजिनसद्गिरः।
नित्यं परोपकाराय सन्ति ते परमार्थतः॥ – आराधना कथाकोश

मरकर पहले स्वर्ग में देव हुआ।

वास्तव में इस महामन्त्र का बहुत बड़ा प्रभाव है। इसी के द्वारा स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति होती है और इसी से संसार भ्रमण छूट जाता है। इस णमोकार महामन्त्र का भावपूर्वक जाप करने से दुख द्वंद्व दूर हो जाते हैं और इसी के द्वारा इच्छित सुखों की प्राप्ति होती है तथा इसी के प्रभाव से समस्त पापों का नाश होता है। संसारसागर से पार लगानेवाला एक यही महायान है तथा कर्म काठ को जलाकर भस्म करने के लिये यही एक महाअग्नि है। तात्पर्य यह है कि णमोकार महामन्त्र का प्रभाव अवर्णनीय है। ऐसा कोई भी शुभ कार्य नहीं है जो इसके प्रभाव से नहीं होता है। इसलिए सर्वज्ञ णमोकार मन्त्र का जप करना चाहिए। श्री अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन पाँच परमेष्ठियों का निरन्तर स्मरण करते रहना चाहिए।

बकरों का इस प्रकार वध हुआ जानकर चारुदत्त को बहुत दु:ख हुआ और वह वहीं बैठकर रुद्रदत्त की खूब निन्दा करने लगे। रुद्रदत्त ने भी चुपचाप चारुदत्त की फटकारें सुन लीं और फिर बोला कि भाई! जो होना था सो हो गया। यह कार्य तो लाचारी की अवस्था में करना पड़ा है। इसके सिवाय और दूसरा कोई उपाय भी तो नहीं था। इस प्रकार अनेक तरह से समझाया, फिर भी चारुदत्त के चित्त में शान्ति नहीं हुई और वह उदास होकर बैठे रहे।

★ ★ ★

मसकों द्वारा आकाशगमन

दुष्टात्मा रुद्रदत्तोऽसौ समुद्रे पतितस्तदा।
मृत्वा स दुर्गतिं प्रापक भवेत् पापिनां शुभम्॥

– आराधना कथाकोश

उधर उन सब लोगों ने बकरों का चमड़ा उठाया और उसे उल्टा करके मसक बना ली। मसक के भीतर तो रोम कर लिये और ऊपर गीला माँस कर लिया। ऐसा इसलिए किया था कि जिससे भेरुंड पक्षी इसे माँसपिण्ड समझकर वहाँ से उठा ले जावें। चारुदत्त ने बहुत चाहा कि मैं यहाँ से अन्यत्र चला जाऊँ और इस मसक में नहीं बैठूँ। किन्तु अन्यत्र जाने का कोई मार्ग ही नहीं था। इसलिए लाचार होकर उन्हें भी उस मसक में बैठना पड़ा। वे सब अपनी-अपनी मसक में छुरी लेकर बैठ गये और भीतर बैठने के बाद मसकों का मुँह सिल लिया। इस प्रकार मसकों में घुसकर वे सब चुपचाप उन्हीं में बैठे रहे।

थोड़ी देर के बाद वहाँ से उड़ते हुए सात भेरुंड पक्षी आये।*

* आराधना कथाकोश में सात पक्षियों का कथन नहीं है, किन्तु उसमें मात्र चारुदत्त और उनके काका रुद्रदत्त के जाने का ही कथन है। उनके दो ही बकरे थे और दो ही पक्षी उन्हें उठाने आये थे।

यथा – छागयोश्चर्मभ्रस्त्रायां तौ प्रविश्य स्थितौ ततः।
रत्नद्वीपात्समागत्य तदा भेरुण्डपक्षिणौ।
तौ समादाय चंचुभ्यां रत्नद्वीपं विनिर्गतौ।

– आराधना कथाकोश।

यहाँ पर 'छागयोः' 'तौ' 'भेरुण्डपक्षिणौ' इत्यादि सभी पद २-२ की संख्या के स्पष्ट सूचक हैं।

इसी प्रकार हरिवंशपुराण में भी बाकी के पाँच मित्रों का कोई उल्लेख नहीं है।

उनमें से एक तो काना था और छह दो-दो नेत्रवाले थे। उनने पर्वत पर पड़ी भातड़ी देखीं और उन्हें माँस पिण्ड समझकर प्रसन्न हो गये। और दौड़कर छह पक्षियों ने अपनी अपनी चोंच से एक-एक मसक उठा ली। उसके बाद एक काने पक्षी ने चारुदत्त की मसक उठाई। और फिर वे सातों अपने देश की ओर उड़ गये।

वे सब पक्षी आकाशमार्ग में उन मसकों को लिये हुए उड़ते-उड़ते समुद्र के बीच में पहुँचे। ऊपर महान आकाश था और नीचे अपरिमित महासागर! दैवयोग से उन्हें एक और पक्षी मार्ग में मिल गया। उसके पास कोई खाद्य पदार्थ नहीं था। और सात पक्षी अपने मुँह में कुछ लटकाये हुए उड़ते जा रहे थे। उन्हें देखकर उस पक्षी को ईर्ष्या उत्पन्न हुई और वह भूखा भी था, इसलिए उन पक्षियों के पास गया। किन्तु जब उसने देखा कि यह सब बलवान हैं, तब उसका साहस जाता रहा। फिर भी एक

उसमें मात्र चारुदत्त और रुद्रदत्त के जाने का ही वर्णन है। उनके दो बकरे थे, दो ही मसकें बनाई थीं, दो ही पक्षी आये थे और उन दोनों को ही उठा ले गये थे। यथा—

भारुण्डैश्चण्डतुण्डाभ्यां भस्त्रे नीते विहायसा।
भस्त्रा काणेन मेऽन्यत्र नीत्वा क्षिप्ता क्षितौ ततः॥

– हरिवंशपुराण

यहाँ पर 'भारुण्डैः (!)' बहुवचन है किन्तु 'तुण्डाभ्यां' द्विवचन है और 'भस्त्रै नीते' भी द्विवचन में आया है। इससे सिद्ध है कि दो ही मसकें थीं और वे दो चोंचों के द्वारा उठाई गई थीं। ऐसा होने पर 'भारुण्डैः(!)' बहु वचनान्त प्रयोग अशुद्ध प्रतीत होता है। बहुत से पक्षियों ने मिलकर दो मसकें उठाई हों सो भी ठीक नहीं है। कारण कि चारुदत्त की मसक मात्र एक काणा पक्षी ही ले गया था। इससे मालूम होता है कि केवल दो ही पक्षी आये थे। चारुदत्त चरित्र में सात पक्षियों के आने की बात सात मसकों के कारण लिखी गई प्रतीत होती है।

काने पक्षी को देखकर उसे कुछ साहस आया और वह उसके साथ लगने लगा। तथा उस माँस पिण्ड को छुड़ाने का प्रयत्न करने लगा।*

जब उस काने पक्षी का बस नहीं चला, तब उसने वह मसक समुद्र में छोड़ दी, फिर थोड़ी देर बाद उठा ली, और जब वह पक्षी पुनः लड़ने को आया, तब फिर उसी प्रकार उस मसक को नीचे डाल दी। इस प्रकार तीन बार चारुदत्त की मसक पानी में गिरी। और फिर अन्त में वह पक्षी चौथी बार उस मसक को उठाकर उड़ता हुआ रत्नद्वीप में ले गया और वहाँ रत्न-पर्वत की शिखर पर जा रखी थोड़ी ही देर में जब वह पक्षी उस मसक को माँस पिण्ड जानकर खाने का प्रयत्न करने लगा तब शीघ्र ही चारुदत्त ने छुरी लेकर वह मसक काट डाली और बाहर निकल आये। और भेरुंडपक्षी उसमें से मनुष्य को निकलता हुआ देखकर अत्यन्त भयभीत हुआ और तुरन्त ही वहाँ से भाग गया। और चारुदत्त उस स्थान को आश्चर्यचकित होकर देखने लगे।

इधर तो चारुदत्त अभीष्ट स्थान पर आ गये किन्तु उधर वे छहों पक्षी अपनी मसकों को अन्यत्र ले गये और जब उनके खाने का प्रयत्न करने लगे, तब उन छहों मनुष्यों ने छुरी से उन्हें फाड़ डाला तथा वे सब बाहर निकल आये। बाहर निकलकर

---

* हरिवंशपुराण में न तो अन्य पक्षी से युद्ध की बात है और न परस्पर में ही युद्ध का जिक्र है। आराधना कथाकोश में भी अन्य पक्षी के आने का कथन नहीं है। किन्तु रुद्रदत्त और चारुदत्त के पक्षियों में आपस में ही लड़ने का कथन है, जिससे रुद्रदत्त की मसक समुद्र में ही जा गिरी और वह मरकर कुगति में गया।

सब एक-दूसरे से मिले, किन्तु जब सातवें चारुदत्त को नहीं देखा, तब वे सब चिन्तित और दु:खी हुए। रुद्रदत्त उन मित्रों को साथ लेकर इधर-उधर चारुदत्त की खोज में फिरने लगा। किन्तु न तो उन्हें चारुदत्त का पता लगा और न चारुदत्त को उनका ही पता था। इसलिए वे सब दु:खी एवं व्याकुल होकर जंगल के फल-फूल खाते हुए यत्र-तत्र घूमते फिरे। किन्तु चारुदत्त का पता न लगने से उनका दु:ख बढ़ता ही गया। वे विचारे कभी अपने कर्म को दोष देते थे तो कभी विह्वल होकर अत्यन्त दु:खी हो जाते थे। इस प्रकार रद्रदत्त आदि छह मित्र इधर चारुदत्त के न मिलने से दु:खी हो रहे थे और उधर चारुदत्त रत्न-पर्वत पर उन अपने मित्रों और काका रुद्रदत्त को न पाकर चिन्तित हो रहे थे।*

★ ★ ★

* इस कथा में रुद्रदत्त आदि छह मनुष्यों को अन्यत्र ले जाने, तथा चारुदत्त के वियोग में फिरने की बात है। किन्तु आराधना कथाकोश में लिखा है कि दुष्टात्मा रुद्रदत्त दोनों पक्षियों के युद्ध होने के कारण समुद्र में गिर पड़ा और वहीं मरकर दुर्गति को प्राप्त हुआ।

यथा — दुष्टात्मा रुद्रदत्तोऽसौ समुद्रे पतितस्तदा।
मृत्वा स दुर्गतिं प्रापक्व भवेत्पापिनां शुभम्। – आराधना कथाकोश

जिन पूजा और मुनिदर्शन

सम्यक्त्वद्रुमसिंचने शुभतरा कादम्बिनी बोधदा।
भव्यानां वरभारतीव नितरां दूती सतां सम्पदे॥
मुक्तिप्रोन्नतमंदिरस्य सुखदा सोपानपंक्तिः शुभा।
पायाद्वस्तु समस्तसौख्यजननी पूजा जिनानां सदा॥

– आराधना कथाकोश

बहुत कुछ सोच विचार करने के बाद चारुदत्त वहाँ से उठे और धीरे-धीरे आगे को बढ़े। कुछ ही दूर जाने पर उन्हें रत्नराशियाँ दिखाई दीं। जिनकी जगमगाहट सूर्यकिरणों से भी अधिक प्रभावक थीं। उसे देखकर चारुदत्त की और भी अधिक उत्कण्ठा बढ़ी और वह आगे को बढ़ते गये। थोड़ी दूर जाने पर उन्हें एक सुन्दर जिनालय के दर्शन हुए। उसकी शोभा देखकर चारुदत्त के हर्ष का पार नहीं रहा। उस जिनालय की भीतें स्वर्णमयी थीं। उनमें प्रकाशमान रत्न जड़े हुए थे। तथा बीच-बीच में हीरा, पन्ना, लाल आदि नग जड़े हुए थे। दरवाजों पर मोतियों की वंदनवारें लटक रही थीं। तात्पर्य यह है कि वह जिनमन्दिर मनुष्यों की तो बात ही क्या, देवों तक के मन को मुग्ध कर लेनेवाला था।

चारुदत्त ने दर्शन के लिए उस मन्दिर में प्रवेश किया। प्रवेश करते ही भीतर की शोभा देखकर वह अपने समस्त पूर्व दुःखों को भूल गये और उनके रोम-रोम में आनन्द व्याप्त हो गया। जिस प्रकार सूर्य को देखकर कमल खिल जाते हैं, उसी प्रकार मन्दिर में मनोज्ञ जिनप्रतिमा के दर्शन कर चारुदत्त का हृदय कमल प्रफुल्लित हो गया। वे अपने मन में फूले न समाये और

हाथ जोड़कर जिनप्रतिमा को नमस्कार किया तथा तीन प्रदक्षिणा देकर अपना जन्म सफल बनाया। उस समय जिनबिम्ब के समक्ष हाथ जोड़कर चारुदत्त खड़े हो गये और गद्गद् होकर इस प्रकार स्तुति करने लगे —

स्तुति

जय जय परमेश्वर परमदेव। मनवचतन करि नित करौं सेव।
कीनो छिनमें अधकरम नाशि। जीते अष्टादश दोषराशि॥1॥
शुभ समवशरन शोभा अपार। जिन इन्द्रनमतकर सीस धार।
देवाधिदेव अरहंत देव। बंदौं मन बच तन करौं सेव॥2॥
जय जय मिथ्यातम हरन सूर। जय जय शिव तरुवर के अँकूर।
जय काम विनाशहार देव। जय मोहमल्ल मलदलन देव॥3॥
तुम दर्शनतैं सुख ह्वै अनंत। तातैं बंदौ शिवरमनि कंत।
जय सुरगमुकति दाता जिनेश। जय कुगतिहरन भवभव कलेश॥4॥
जय जय कंचनसम तन दिपंत। जय कोट दिवाकर मलिन क्रांत।
ऐसे श्री जिनके दरश पाय। अघवृंद दूर छिनमैं पलाय॥5॥
ऐसे श्री जिनको वदन देख। मो गया आज पातक विशेख।
तुम धन्य जिनेश्वर देव आय। तिनके सुरनर खग परत पाय॥6॥
धन आज मोहि लोचन विचार। तुम मूरत देखी हम निहार।
धन मस्तक आज पवित्र मोहि। नमियों पदकमलनि देव तोहि॥7॥
धनि धन्य आज मेरे जु पांय। तुम लौं प्रभु पहुंच्यो आजु आय।
धन मेरे आज पवित्र हाथ। तुम पर से त्रिभुवनके सुनाथ॥8॥
घन आनन मोहि पवित्र आज। रसना कर गुन गाये समाज।
प्रभु आजहि गयो कलंक मोह। देखी मूरत सुखकार तोय॥9॥

अति मुदित भयो मुझ हिसो संत। बहुविध स्तुति जिनकी करंत।
स्तुति करतैं नहिं उर अघाय। कर जोरि भाल निज नाय नाय ॥10 ॥

चारुदत्त ने इस प्रकार स्तुति करके भक्तिभाव से हर्षपूर्वक जिन पूजा की और कुछ समय तक वहीं बैठकर वह वहाँ से उठे और बाहर को चल दिये। किन्तु उन्हें आसपास में कोई भी मनुष्य दिखाई नहीं दिया, इसलिए वह कुछ विचार में पड़ गये। थोड़ी ही दूर आगे जाने पर उन्हें एक गुफा दिखाई दी। चारुदत्त उसमें चले गये। वहाँ एक मुनिराज विराजमान थे। उन्हें देखकर चारुदत्त को बहुत हर्ष हुआ और उनके निकट जाकर इस प्रकार स्तुति करने लगा :-

जय जय गुरु भव अघ हरना, जय जय सुख संपति करना।
जय जय कंदर्प जु दलना, जय मोह महामद मलना ॥1 ॥
जय जय इन्द्रिय दे दण्ड, जय पंच महाव्रत मंड।
जय परिगहतैं सु उदासी, जय सप्त तत्वारथ भासी ॥2 ॥
जय समता राखन चित्त, देखत इकसे अरिमित्त।
अठवीस मूल गुण धारी, पुन सहत परीषह भारी ॥3 ॥
जिनके बच हैं सुख खानी, जिन संग कुगति की हानी।
तजि कुमति सुमति चित गहिये, तुम संगति शिव सुख लहिये ॥4 ॥
गुरु बिन नहिं और सहाई, तुम ही परमारथ भाई।
जय जय जय आनन्दकारी, जय जय करुणानिधि धारी ॥5 ॥

इस प्रकार स्तुति करके चारुदत्त मुनिराज के समक्ष हाथ जोड़कर खड़े रहे, तब मुनि महाराज 'धर्मवृद्धि' कहकर बोले कि 'चारुदत्त! तू कुशल तो है? तेरा यहाँ कैसे आना हुआ?'

मुनिराज के इस प्रकार वचन सुनकर चारुदत्त आश्चर्यचकित हो गये और बोले कि मुनिश्वर! आपने मुझे पहले कहाँ देखा है? क्या आप मुझे पहिचानते हैं? आपके श्रीमुख से अपना नाम सुनकर मैं बड़े ही अचम्भे में पड़ा हूँ। क्या आप दया करके मेरा समाधान करेंगे?

★ ★ ★

उपकृत जीवों से मिलाप

परोपकारिणो लोके सन्ति ये बुधसत्तमाः।
कैः सुराद्यैर्न पूज्यन्ते महाभक्तिभरैश्च ते॥

–आराधना कथाकोश

चारुदत्त को आश्चर्यचकित देखकर मुनिराज ने कहा कि वत्स! मैं अमितगति विद्याधर हूँ। तुम अभी भूले नहीं होगे कि मुझे चम्पापुर के बाग में एक वृक्ष की शाखा पर मेरा दुष्ट मित्र कीलकर और मेरी पत्नी को लेकर भाग गया था, उस समय तुमने ही मुझे छुड़ाकर मेरे प्राण बचाये थे और मैं वहाँ से छूटकर अपनी पत्नी को उस दुष्ट के पास से छुड़ा लाया था।* इस प्रकार

---

* चारुदत्त चरित्र में लिखा गया है कि विद्याधर अपनी पत्नी को छुड़ाने के लिये अपने ग्राम में ही गया था और वहाँ से अपने दुष्ट मित्र के पास से छुड़ा लाया था। हरिवंशपुराण में उत्तर दिशा से छुड़ा लाने की बात है। किन्तु आराधना कथाकोश में 'कैलाश' पर्वत से छुड़ा लाने का कथन है।

यथा — ततः कैलाशनामानं गत्वाहं वेगतो गिरिम्।
धूमसिंहं खगं जित्वा गृहीत्वा कामिनीं निजाम्॥

तुम्हारे ही प्रसाद से मेरा जीवन सुखी बन सका था। उसके बाद मैंने बहुत समय तक राज्य किया और विविध विभूतियों का उपभोग किया। राज्य सुख के अतिरिक्त पुत्र-पौत्रों का भी खूब सुख भोग और अन्त में वैराग्य निमित्त मिलने पर यह दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली।[१]

इस प्रकार मुनि महाराज ने अपना सारा पूर्ववृत्तान्त सुनाया। उसी समय मुनिराज (विद्याधर) के दो पुत्र सिंहग्रीव[२] और बारहग्रीव विमान में बैठकर वहाँ मुनि वन्दना के लिये आये। पहले वे जिनमन्दिर में गये और वहाँ जिन प्रतिमा को नमस्कार स्तुति की।[३] पश्चात् पूजा, नृत्य, भजनादि करके वे हर्ष और

१. हरिवंशपुराण में बहुत अच्छे ढंग से परिचय दिया गया है। उससे मुनिराज की पूर्व स्थिति का पूर्ण ज्ञान हो जाता है। वह इस प्रकार है :- ''मैं वही 'अमितगति' नाम का विद्याधर हूँ, जिसको कि एक समय चम्पापुरी में वैरी ने कील दिया था, और उसकी तुमने रक्षा की थी। तुम्हारे यहाँ से आने के थोड़े ही दिन बाद मेरे पिता को वैराग्य हो गया। मैं परम सम्यग्दृष्टि सच्चरित्र था। मेरे पिता ने मुझे राज्य सौंप दिया और आप 'हिरण्यकुम्भ' नामक गुरु के चरणकमलों में दिगम्बर दीक्षा से दीक्षित हो गये। मेरी 'विजयसेना' और 'मनोरमा' नाम की दो पट्टरानियाँ थीं। विजयसेना की 'गंधर्वसेना' नाम की पुत्री हुई। और मनोरमा के बड़ा पुत्र 'सिंहयश' और छोटा पुत्र 'वराहग्रीव' नामक हुआ। ये दोनों पुत्र विनयादि गुणों के मन्दिर हैं। एक दिन मुझे भी संसार से उदासीनता हो गयी। मैंने बड़े पुत्र को तो राज्य सौंप दिया और छोटे को युवराज बना महामुनि अपने पिता के पास जाकर दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली। चारुदत्त! इस द्वीप का नाम 'कुंभकटक' है। इसके चौतरफा समुद्र है। और यह 'कर्कोटक' नाम का विशाल पर्वत है। इसलिए अब तुम बताओ कि यहाँ तुम कैसे आये?'' इत्यादि।

२. हरिवंशपुराण और आराधना कथाकोश में 'सिंहयश' नाम आया है।

३. हरिवंशपुराण और आराधना कथाकोश में मन्दिर में जाने की कोई बात नहीं है। किन्तु विमान से सीधे उतरकर मुनिराज के पास आने का कथन है।

उत्साहपूर्वक मुनिराज के पास गये और हाथ जोड़कर इस प्रकार स्तुति करने लगे :—

संसार सागर से पार करनेवाले जहाज समान हे मुनिराज! तुम धन्य हो। जो तुम्हारे चरण-कमलों की भक्ति करते हैं, वे तत्काल ही अशुभकर्मों का नाश करते हैं। निशदिन तुम्हारा स्मरण करने से प्रत्येक आत्मा क्रमशः मुक्ति प्राप्त कर सकता है। हे भगवन! तुम्हीं सच्चे उद्धारक गुरु हो। तुम्हारी सेवा भक्ति पाप को नाशकर स्वर्ग मोक्ष को देनेवाली है। तुम करुणासागर हो, गुणों के भण्डार हो, राग-द्वेषरहित हो, बाईस परीषहों के विजेता हो, पर्वतों के शिखर और कन्दराओं में रहनेवाले हो और संसार से उदासीन किन्तु सबको सुख देनेवाले हो। हे मुनिराज! यदि सच पूछो तो तुम्हारे सिवाय अन्य कोई सुखदाता और भवसागर से पार लगानेवाला नहीं है।

इस प्रकार दोनों विद्याधर पुत्रों ने मुनिराज की बहुत ही स्तुति और भक्ति की। तब मुनि महाराज ने सबको कल्याणकारी उपदेश दिया। बाद में उन अपने पुत्रों से मुनिराज ने कहा कि देखो, यह चारुदत्त है, यह जो कहें सो तुम करना और इनकी इच्छापूर्ति करना।

यह सुनकर दोनों पुत्रों ने पूछा कि यह चारुदत्त कौन हैं? कहाँ के रहनेवाले हैं? इनके माता-पिता का क्या नाम है? इनका यहाँ कैसे आना हुआ? और आप इन्हें कैसे जानते हैं? कृपया इनका पूरा परिचय दीजिए। मुनिराज ने आदि से अन्त तक सब हाल सुनाकर चारुदत्त का पूरा परिचय कराया। एक-दूसरे का परिचय प्राप्त कर वे सब बहुत प्रसन्न हुए।

उधर चारुदत्त के द्वारा दिये गये मन्त्र के प्रभाव से उस रसकूप का वह मनुष्य और रुद्रदत्त के हाथ से मारा गया बकरे का जीव दोनों प्रथम स्वर्ग में देव हुए थे, उनने अवधिज्ञान से अपनी पूर्व बातों को प्रत्यक्षवत् स्पष्ट जाना और कहा कि यह स्वर्गसम्पदा चारुदत्त के प्रसाद से ही हमें मिली है। अब अपना कर्तव्य है कि चारुदत्त के पास जाकर उसके चरणकमलों के दर्शन करें।

यह विचार कर उनने एक सुन्दर विमान तैयार किया। वह विमान स्वर्ण, हीरा, माणिक और मोतियों से सुशोभित मालूम होता था। उसमें रुनझुन रुनझुन करती हुई घंटियाँ शोभा दे रही थीं और ध्वजायें फहरा रही थीं। इस प्रकार मनोहर विमान में बैठकर वे रत्नशैल पर गये। वहाँ जाकर जिनमन्दिर की पूजा की और फिर मुनिराज के पास गये जहाँ चारुदत्तकुमार बैठे थे। वहाँ पहुँचते ही उन देवों ने* मुनिराज को नमस्कार न करके पहले चारुदत्त को नमस्कार किया और फिर मुनि महाराज की वन्दना की।

यह अक्रमिक नमस्कार देखकर सिंहग्रीव ने कहा** कि हे स्वर्गवासी देवों! आप भले ही देव कहलाते हैं किन्तु मालूम होता है कि स्वर्ग में विवेक प्राप्त नहीं किया है। यह सुनकर देवों ने कहा कि वीरपुत्रों! तुम हमें अविवेकी क्यों कह रहे हो? हमने ऐसा कौनसा अविवेक का कार्य किया है?

तब सिंहग्रीव ने कहा कि क्या यह कम अविवेक है जो आपने

---

* आराधना कथाकोश में मात्र एक ही देव (बकरे का जीव) का आना लिखा है।

** आराधना कथाकोश में लिखा है कि नमस्कार करते समय चारुदत्त ने ही देव को रोका था। सिंहग्रीव ने कुछ नहीं कहा था।

पहले गृहस्थ को नमस्कार किया और फिर बाद में गुरु महाराज की वन्दना की ? अच्छा, आप ही कहिये कि क्या आपने यह उचित किया है ? यदि आप कोई युक्ति-संगत कारण बता सकें तो मैं भी मानने के लिये तैयार हूँ। तब उस देव ने जो बकरे का जीव था अपने पूर्वभव का सारा वृत्तान्त इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया।

★ ★ ★

उपकृत देवों का पूर्वभव

पूर्वे कृतोपकारस्य पुंसः प्रत्युपकारतः।
कृतित्वमुपकार्यस्य नान्यथेति विदो विदुः॥

- हरिवंशपुराण

बहुत ही धन-सम्पत्ति एवं वैभवयुक्त बनारस नगरी है। वहाँ के निवासी दिन-रात आनन्द-विनोद में अपना समय व्यतीत करते हैं। उसी नगर में वेद पुराण और व्याकरण का ज्ञाता एक 'सोमशर्मा' नाम का ब्राह्मण था। उसकी स्त्री का नाम 'सौमिल्ला' था। वे दोनों बड़े ही आनन्दपूर्वक अपना गृही जीवन व्यतीत करते थे। उनके दो पुत्रियाँ थीं। एक का नाम 'सुभद्रा'* और दूसरी का नाम था 'सुलसा'।

जब वे दोनों लड़कियाँ बड़ी हुईं, तब उन्हें पढ़ने के लिये पाठशाला में भेजा गया। कुछ समय बाद वे लड़कियाँ पढ़कर बहुत प्रवीण हो गईं और वाद-विवाद करने में अत्यन्त ही चतुर

* हरिवंशपुराण में 'भद्रा' नाम आया है।

हो गईं। उन्हें अपने ज्ञान का कुछ मद भी था, इसलिए वे प्रत्येक व्यक्ति से शास्त्रार्थ करने के लिये सदा तत्पर रहती थीं। कुछ समय के बाद जब वे लड़कियाँ विवाह योग्य हुईं, तब उनने संन्यासिनी होकर निश्चय किया कि या तो हम इसी प्रकार साधु अवस्था में अपना जीवन पूर्ण कर देंगी या फिर उसके साथ विवाह करेंगी जो हमें शास्त्रार्थ में हरा देगा।

यह बात कानों कान सर्वत्र फैल गयी और लोगों में इसकी बहुत चर्चा होने लगी। धीरे-धीरे यह बात याज्ञवल्क नामक तपस्वी तक पहुँची। वह तपस्वी बहुत ही विद्वान था। तर्क छन्द और वेदादिक का ज्ञाता एवं वाद-विवाद में बहुत ही चतुर था। उसने निश्चय किया कि मैं उन लड़कियों का ज्ञानमद उतारूँगा। यह विचार कर याज्ञवल्क बनारस की ओर चल दिया। वहाँ पहुँचने पर उन संन्यासिनी लड़कियों के साथ शास्त्रार्थ हुआ। बहुत कुछ वाद-विवाद के बाद तपस्वी याज्ञवल्क ने सुलसा को पराजित कर दिया और उसके साथ विवाह कर लिया।

सुलसा के साथ ही उसकी बहिन सुभद्रा भी उस तपस्वी के आश्रम में रहने लगी और वे आनन्दपूर्वक कालयापन करने लगीं। कुछ समय के पश्चात् सुलसा के पुत्र उत्पन्न हुआ। इसलिए संन्यासी याज्ञवल्क चिन्ता में पड़ गया और विचारने लगा कि अब क्या करना चाहिए? इस जंजाल में फँसना ठीक नहीं था। अभी भी इससे निवृत्त होने का एक मार्ग है। इस प्रकार विचारकर वह उस लड़के को एक पीपल के वृक्ष के नीचे रख आया और स्वयं सुलसा को लेकर कहीं अन्यत्र चला गया।

जब सुलसा की बहिन सुभद्रा ने उन दोनों को वहाँ नहीं

पाया, तब वह इधर-उधर उन्हें ढूँढ़ने लगी। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उसे पीपल के वृक्ष के नीचे एक बालक पड़ा हुआ दिखाई दिया। सुभद्रा ने उसे अपनी बहिन का पुत्र जानकर उठा लिया और अपने स्थान पर ले गई। सुभद्रा ने उसे पीपल के नीचे पड़ा हुआ पाया था, इसलिए उसका नाम 'पिप्पलादित्य' रखा* और बड़े ही प्रेम से उसका पालन पोषण किया। जब वह कुछ बड़ा हुआ, तब सुभद्रा ने स्वयं ही उसे पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। कुछ ही समय के बाद वह बालक तर्क, छन्द, व्याकरण और काव्य का प्रकाण्ड वेत्ता हो गया। वास्तव में जिसकी माता और संरक्षिका विदुषी हो, उसका बालक क्यों न विद्वान होगा? पिप्पलादित्य को भी शास्त्रार्थ करने का बहुत शौक था। वह यज्ञ यागादिक और क्रियाकाण्ड में भी बहुत प्रवीण था। इसलिए धीरे-धीरे उसकी भी बहुत ख्याति हो गयी।

एक दिन पिप्पलादित्य ने सुभद्रा से पूछा कि माताजी! मेरा यह नाम रखने का क्या प्रयोजन है?* तब सुभद्रा ने उसे आदि से अन्त तक का सारा हाल सुना दिया और कहा कि तेरे माता-पिता तो दूसरे ही हैं, मैंने तो तुझे मात्र पाल पोषकर बड़ा किया

---

* हरिवंशपुराण में पिप्पलादित्य का नाम 'पिप्पलाद' बताया गया है। यथा—

तत्रोत्तानशयं भद्रा दृष्ट्वा स्वत्थफलादिनं।
पिप्पलादाभिधानेन व्याहूयैनमवीवृधत्॥

* हरिवंशपुराण में पिप्पलाद द्वारा अपने नाम का कारण पूछने की बात नहीं है, किन्तु उसने अपने पिता का नाम पूछा था और पूछा था कि क्या वे अभी जीवित हैं? यथा —

पारगः सर्वशास्त्राणामेकदाऽपृच्छदित्यसौ।
मात: किमभिधानो मे पिता जीवति वा न वा॥ – हरिवंशपुराण

है, इसलिए तू अभी तक मुझे अपनी माता समझता रहा है। यह सुनकर पिप्पलादित्य के क्रोध का ठिकाना नहीं रहा। उसने अपने माता-पिता की निर्दयता पर बहुत ही घृणा प्रगट की और उनकी इस कर्तव्यहीनता का बदला लेने का निश्चय किया। वह सुभद्रा से आज्ञा लेकर वहाँ से चल दिया और अपने माता-पिता को ढूँढ़ता हुआ उनके पास जा पहुँचा।

वहाँ पहुँचकर उसने माँ-बाप को अपना परिचय नहीं दिया और उनसे शास्त्रार्थ करना प्रारम्भ कर दिया। उसमें उसे विजय प्राप्त हुई। विजयी होने के बाद पिप्पलादित्य ने अपना परिचय दिया और माता-पिता की मिथ्या विनयपूर्वक सेवा सुश्रूषा करने लगा और अपने विद्याबल के प्रभाव से खूब ख्याति प्राप्त की तथा अपने अनेक अनुयायी बना लिये। मैं (वर्तमान में देव) भी उसका जाज्ञबलि* नामक शिष्य हो गया था और उसके पास खूब विद्याध्ययन करके ज्ञान प्राप्त किया। उसके बाद मैंने यज्ञ का प्रचार किया और अनेक बकरों का बलिदान कराया। इतना ही नहीं, किन्तु अनेक मिथ्या शास्त्रों का भी प्रचार किया। इसके फलस्वरूप अन्त में रौद्रध्यानपूर्वक मरा और घोर नरक में गया। वहाँ पर वर्णनातीत दु:ख सहन किये।

नरकों में छेदा जाना, भेदा जाना, गर्मी, ठण्डी आदि के दु:ख सहन किये। कभी शूली पर चढ़ाया जाना, कभी शस्त्रों से शरीर

---

* हरिवंशपुराण में 'जाज्ञबलि' नहीं किन्तु वाग्बलि नाम आया है। यथा —

पिप्पलादस्य शिष्योऽहं जडग्रन्थेन वाग्बलि:।
तद्दर्शनं समर्थ्यागान्नरकं घोरवेदनं॥

विदारण होना, कभी बुरी तरह पीटा जाना, कभी खौलते हुए तेल की कड़ाही में डाला जाना, कभी पानी माँगने पर गरम करके पिघलाये हुए शीशे का पिलाया जाना आदि के घोर दु:ख सहे। अनेक दुष्ट नारकी शरीर को छिन्न-भिन्न करके उस पर खारा पानी छिड़क देते थे, उससे जो जो वेदना होती थी, वह वर्णन नहीं की जा सकती। वास्तव में वहाँ पर दु:ख के सिवाय लेशमात्र भी सुख नहीं है। करुणा का तो वहाँ नाम ही नहीं है। सब नारकी मिलकर नये नारकी पर निर्दयतापूर्वक टूट पड़ते हैं और उसे बुरी तरह मारते हैं। मैंने इस प्रकार अनेक दु:ख चिरकाल तक सहे और आयु पूर्ण होने पर मेरा दुखिया जीव वहाँ से निकाल।

वहाँ निकलकर भी कोई उत्तम गति नहीं मिली, किन्तु बकरे का जन्म लिया। वहाँ पर भूख, प्यास आदि का बहुत दु:ख सहन किया। इतने से ही मेरे दु:ख का अन्त नहीं हुआ था। इसलिए दुष्ट याज्ञिकों के हाथ में पड़कर मैं यज्ञ में होमा गया। उसके बाद भी पुन: बकरे का जन्म धारण किया। वहाँ पर भी यज्ञ में मेरा होम किया गया। फिर भी बकरे का ही भव प्राप्त हुआ। इस प्रकार एक बार नहीं, दो बार नहीं, किन्तु सात बार बकरे का जन्म लेना पड़ा। उनमें से छह बार तो यज्ञ में होमा गया और सातवीं बार प्राटक देश में* बकरा हुआ।

जब रुद्रदत्त बकरों को लाकर उन पर सवारी करके पहाड़

---

* हरिवंशपुराण में 'प्राटक' की जगह 'टंकणक' देश लिखा है। यथा —

सप्तमेऽपि च वारेऽहं देशे टंकणकेऽभवत्।
अज एव निजै: पापै: प्रेरित: प्राणिघातजै:॥ – हरिवंशपुराण

पर जा रहा था, तब मैं भी चारुदत्त को लेकर पर्वत पर चढ़ रहा था। दुर्दैववशात् रुद्रदत्त ने अन्य बकरों की भाँति मेरा भी गला काट डाला। किन्तु सद्भाग्य से चारुदत्त ने मेरे ऊपर दया करके मरते समय पंच नमस्कार मन्त्र दिया, जिसके प्रभाव से मैं ऋद्धिधारी देव हुआ हूँ।* वहाँ पर अवधिज्ञान के द्वारा अपने उपकारी को जानकर मैं यहाँ आया हूँ। मुझे जिनधर्म का उपदेश और णमोकार मन्त्र देकर स्वर्ग प्राप्त करानेवाले चारुदत्त ही मेरे आद्य-गुरु हैं। इसलिए मैंने उन्हें ही पहिले नमस्कार किया है। इनने मेरा भारी उपकार किया है। भला मैं इनके इस उपकार को कैसे भूल सकता हूँ ?

★ ★ ★

इस प्रकार एक देव के पूर्वभव कहने पर दूसरे देव ने भी अपना समस्त वृत्तान्त सुनाना प्रारम्भ किया। वह बोला कि मुझे एक परिव्राजक ने धोखे में डालकर रसकूप में पटक दिया था। उस समय चारुदत्त भी उसी प्रकार संन्यासी के जाल में फँसकर उस कुएँ में उतरे। उनने मेरी मरणासन्न स्थिति देखकर मुझे धर्मोपदेश दिया और पंच नमस्कार मन्त्र सुनाया। उसके प्रभाव से मैं सौधर्म स्वर्ग में ऋद्धिधारी देव हुआ हूँ। यही कारण है कि मैं चारुदत्त को अपना आद्य-गुरु मानता हूँ और इसीलिए मैंने मुनिराज से पहिले चारुदत्त को नमस्कार किया है। चारुदत्त के

---

* सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ था। यथा —

जातोऽहं जिनधर्मेण सौधर्मे विबुधोत्तमः॥ – हरिवंशपुराण

तत्प्रभावेन सौधर्मे देवो जातोऽहमद्भुतः॥ – कथाकोश

ही उपकार का यह फल है कि हम दोनों ऋद्धिधारी देव हुए हैं। अब आप ही कहिये कि उन्हें यदि हम दोनों ने अपना प्रथम गुरु मानकर पहले नमस्कार किया तो उसमें कौनसी अनुचित बात हुई है? जिसने मुझे नगण्य अवस्था से इतना बड़ा किया है, उसे हम मानपूर्वक नमस्कार क्यों नहीं करें?

यदि कोई एक अक्षर का ज्ञान करा दे, या आधे पद का ज्ञान करावे अथवा एक पद का दाता भी हो तो उसे कभी नहीं भूलना चाहिए। यदि कोई ऐसे उपकार को भूल जाता है, तो वह महान पापी है, फिर जो अपने धर्मोपदेशक या उद्धारक को भूल जाये तो उससे बढ़कर पापी कौन हो सकता है?*

इसलिए हमारा तो निश्चय है कि अपने उपकारकर्ता की सदा

---

* पापकूपे निमग्नेभ्यो धर्महस्तावलम्बनं।
ददता कः समो लोके संसारोत्तारणं नृणां॥
अक्षरस्यापि चैकस्य पदार्थस्य पदस्य वा।
पूर्वं कृतोपकारस्य पुंसः प्रत्युपकारतः।
कृतित्वमुपकार्यस्य नान्यथेति विदो विदुः॥
तत्कृतौ शक्तिवैकल्ये कुलीनः स कथं न यः।
सद्भावं दर्शयेत्तस्मै स्वाधीनं विगतस्मयः॥ – हरिवंशपुराण

अर्थ – पापरूपी कूप में डूबे हुए जीवों को जो मनुष्य धर्मरूपी हाथ का सहारा देनेवाला है, भला कहिये लोक में उसके समान कौन उपकारी है? एक अक्षर को या आधे पद को अथवा एक पद को प्रदान करनेवाले भी मनुष्य को भूल जानेवाला मनुष्य जब पातकी कहलाता है, तब कल्याणकारी धर्म के उपदेश देनेवाले को भूल जानेवाला तो परम पातकी समझना चाहिए। विद्वानों का मन्तव्य है कि उपकार्य मनुष्य उसी समय पुण्यवान समझा जाता है, जबकि वह दुःख में उपकार करनेवाले अपने उपकारी का भले प्रकार प्रत्युपकार करे। यदि उपकार करने की सामर्थ्य न हो तो वह भी पुरुष उत्तम और पुण्यवान समझा जाता है जो निरभिमानी होकर अपने उपकारी के साथ शुभभाव प्रगट करता है।

स्तुति करना चाहिए और जिस णमोकार मन्त्र के प्रभाव से हमारा उद्धार हुआ है, उसका सदा ही जप करना चाहिए। इस प्रकार देवों के द्वारा अपने पूर्वभव का कथन और मुनिराज के पहिले चारुदत्त को नमस्कार करने का कारण जानकर सिंहग्रीव और वराहग्रीव बहुत ही हर्षित हुए।

फिर दोनों देवों ने हाथ जोड़कर चारुदत्त से कहा कि हे उपकारी वीर! आपका ऋण हम कैसे चुका सकेंगे? कृपाकर मेरे योग्य कोई सेवा बताइये। आपकी सेवा करके ही हम कृतार्थ होंगे। देवों की विनयपूर्ण प्रार्थना सुनकर चारुदत्त ने कहा कि हमारे रुद्रदत्त आदि छह मित्र न जाने कहाँ मारे-मारे फिरते हैं। आप उन्हें लाकर मेरे साथ मिलाप कराइये। विशेष तो आपसे अभी हमें कोई काम नहीं है। यह सुनकर दोनों देव विमान में बैठकर आकाश में उड़ गये। और रुद्रदत्त आदि को लाकर चारुदत्त के सामने ही उपस्थित किया।*

उस समय सातों मित्र गले से गला लगाकर खूब मिले और अपने-अपने सुख-दुःख की सब बातें कह सुनाई। कुशल समाचार पूछने के बाद सब लोग आनन्दित हो गये। तत्पश्चात् उन दोनों देवों

---

* हरिवंशपुराण में ऐसा कोई कथन नहीं है कि चारुदत्त ने देवों से रुद्रदत्त आदि को लाने की प्रार्थना की हो या देव उन्हें लेने के लिये गये हों और भेंट करायी हो। वहाँ तो मात्र इतना ही वर्णन है कि देवों द्वारा प्रार्थना किये जाने पर चारुदत्त ने कहा कि अभी आप अपने-अपने स्थान पर जाइये। फिर जब कभी मैं स्मरण करूँ तब आप मेरी सहायता करना। आराधना कथाकोश में भी रुद्रदत्त आदि को बुलाने या उनसे मिलाप होने की कोई बात नहीं है। वहाँ तो इसके पूर्व ही रुद्रदत्त का समुद्र में मरण बताया गया है।

ने चारुदत्त को कहा कि आपको जितने द्रव्य की आवश्यकता हो सो मुझे आज्ञा दीजिए, हम उतना द्रव्य आपकी सेवा में उपस्थित कर देंगे। चारुदत्त कुछ कह ही नहीं पाये थे कि सिंहग्रीव और वराहग्रीव ने देवों से कहा कि आप कोई कष्ट न करें, हम स्वयं ही चारुदत्त की इच्छा पूर्ण करेंगे और यह जो भी सेवा कहेंगे, उसे हम करेंगे। इन्हें हम यथेच्छ धन देकर चम्पापुर भेज देंगे। यह सुनकर देवों ने चारुदत्त की आज्ञा ली और अपने स्थान को चले गये।*

★ ★ ★

स्वदेश गमन

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी

इसके बाद सिंहग्रीव और वराहग्रीव ने चारुदत्त से अपने देश को चलने के लिये प्रार्थना की। चारुदत्त ने भी इसे स्वीकार किया। तब उनने एक सुन्दर विमान सजाया। वह विमान मणिमुक्तादि से जड़ित होने के कारण बहुत ही शोभित हो रहा

---

* हरिवंशपुराण और आराधना कथाकोश में बताया है कि देवों ने जाने के पूर्व चारुदत्त को ऐसे वस्त्र भेंट किये थे जो अग्नि में न जल सकें और उत्तम मालायें, उबटन, आभरणादि से विभूषित किया था। यथा —

वस्त्रैरग्निविशौध्यैर्मां भूपामाल्यविलेपनैः।
भूषयित्वा ससत्कारमभाषेतां सुभूषणैः॥ – हरिवंशपुराण

वस्त्राभरणसंदोहैश्चरुदत्तं गुणोज्वलम्।
समभ्यर्च्य पुनर्नत्वा स्वर्गलोकं गतो मुदा॥ – आराधना कथाकोश

था। उसमें मनोहर शब्द करनेवाली घूँघरू और घण्टा लगे हुए थे। तथा चारों ओर ध्वजा पताकायें फहरा रही थीं। दोनों विद्याधर और चारुदत्त, मुनिराज को नमस्कार करके उस विमान में बैठे और आकाश में प्रयाण किया। थोड़ी देर के बाद विद्याधरों का विमान उनके नगर के निकट पहुँचा और नीचे उतरा।*

उस नगर की अपूर्व शोभा देखते ही बनती थी। उस पर भी विद्याधरों ने उसे और भी सुसज्जित करके देवपुरी से भी अधिक सुन्दर बना दिया। घर-घर में वन्दनवारें बाँधी गईं और बाजार सजाया गया। फिर चारुदत्त ने नगर में प्रवेश किया। उन्हें नगर की शोभा देखकर बहुत ही आनन्द हुआ। विद्याधर स्वागत विधि एवं मंगलाचरण के बाद चारुदत्त को अपने महलों में ले गये। और बड़े ही ठाठवाट के साथ आदर सन्मान करके सुख एवं सन्तोष प्राप्त किया।

चारुदत्त वहाँ बड़े ही आनन्द से रहने लगे और विद्या आराधन एवं ज्ञान सम्पादन करते हुए कालयापन करने लगे। वहाँ रहते हुए चारुदत्त ने विद्याधरों को बत्तीस कुमारिकाओं के साथ विवाह किया। वे कुमारियाँ अनन्त रूप, गुण एवं सुलक्षण युक्त थीं। चारुदत्त अपने लिये निर्माण कराये गये जुदे महलों में उनके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे और पूर्वपुण्य के उदय से विविध भोगोपभोग करने लगे।

उधर विद्याधर कुमारियों के साथ नाना भाँति की क्रीड़ा

* विद्याधरों के उस नगर का नाम 'शिवमंदिर' था। यथा —

अहं च मुनिमानम्य विमानेन विहायसा।
खेचराभ्यां सहायातः प्राविशं शिवमंदिरम्॥ – हरिवंशपुराण

करते हुए चारुदत्त अपने तमाम दुःखों को भूल गये और इन्द्रों के समान आनन्दानुभव करने लगे।* इस प्रकार चारुदत्त निरन्तर आनन्दमग्न रहते थे और अनेक विद्याधर उनकी सेवा किया करते थे। चारुदत्त उन बत्तीस कुमारियों के साथ जिस प्रकार आनन्द क्रीड़ा करते थे, उसी प्रकार समयानुसार जिनपूजा आदि श्रावक के नित्यकर्मों को भी बड़ी ही चाव से किया करते थे।

एक दिन रात्रि को सुखनींद में सोते हुए चारुदत्त एकदम चौंक उठे और उन्हें घर की चिन्ता ने आ दबाया। तब वह इस प्रकार विचार करने लगे कि मुझे अब अपने नगर में जाकर माता और स्त्री से मिलना चाहिए। उनसे अलग हुए बहुत समय व्यतीत हो गया है। न जाने माताजी और पत्नी की गुजर कैसे चलती होगी। वे अपने दिन किस प्रकार पूरे कर रही होंगी। इसलिए अब बिना कुछ सोच-विचार किये शीघ्र ही उनके पास जाना चाहिए।

इस प्रकार सोच-विचार करते-करते सवेरा हो गया। तब चारुदत्त ने सिंहग्रीव से कहा कि कृपा करके अब मुझे अपने घर जाने की आज्ञा दीजिए। यह सुनकर विद्याधर सिंहग्रीव को बहुत दुःख हुआ, और वह बोला कि कुमार! इतनी प्रीति बढ़ाकर अब आप यह क्या कह रहे हैं ? आपको हमारे राज्य में रहने से यदि किसी प्रकार का कोई संकोच हो तो यह राज्यभार आप ही सम्हालिये और हम आपके सेवक होकर रहेंगे। कृपया अब आप अपने देश जाने की बात नहीं कहें। मुझे यह सुनकर भारी दुःख होता है।

* हरिवंशपुराण में विद्याधर कुमारियों के साथ विवाह करने का कोई कथन नहीं है।

विद्याधर सिंहग्रीव आदि की यह स्नेहपूर्ण बातें सुनकर चारुदत्त ने कहा कि राजन्! मैं आपके इस प्रेम और कृपा के लिये आभारी हूँ। वास्तव में आपकी ही कृपा का यह फल है कि मैं इतना सुखी हो सका हूँ। आपके राज्य में रहते हुए मुझे न तो कोई संकोच है और न चिन्ता ही है। किन्तु अब माता, पत्नी और कुटुम्बीजनों की भी खबर लेना आवश्यक है। वे न जाने किस प्रकार अपने दिन बिताते होंगे। इसलिए अब आप मुझे नहीं रोकिये और सहर्ष जाने की आज्ञा दीजिए। इस प्रकार चारुदत्त का हठ देखकर विद्याधर ने उन्हें जाने की सम्मति दे दी और उनके जाने का सुयोग्य प्रबन्ध कर दिया।

★ ★ ★

गन्धर्वसेना के साथ प्रयाण

चारुहंसविमानेन साकं गंधर्वसेनया।
आनीय मित्रदेवौ मां भूत्या विस्मयनीयया॥

– हरिवंशपुराण

विद्याधर सिंहग्रीव ने चारुदत्त के जाने के पूर्व उनसे विनयपूर्वक कहा कि आपको हमारा एक कार्य करना होगा। रूप लावण्य और अनेक लक्षणों से युक्त गन्धर्वसेना नाम की मेरी एक सुन्दर कन्या है।* वह वीणावादन में बहुत ही प्रवीण है तथा कलामय

* हरिवंशपुराण में गन्धर्वसेना सिंहग्रीव की पुत्री नहीं किन्तु बहिन बताई गई है। वहाँ सिंहग्रीव और वराहग्रीव को 'कन्यायाः भ्रातरौ' लिखा है। यही ठीक भी है।

संगीत में भी उसके सामने कोई टिक नहीं सकता। उसने दृढ़ प्रतिज्ञा की है कि मुझे जो वीणावादन में जीत लेगा, मैं उसी के साथ अपना विवाह करूँगी। गन्धर्वसेना की यह प्रतिज्ञा सर्वत्र फैल चुकी है और अनेक राजा-महाराजा तथा विद्याधरों ने आकर अपना वीणाचातुर्य भी दिखाया है, किन्तु सब अपनासा मुँह लेकर पराजित हो वापिस चले गये। अभी तक गन्धर्वसेना को जीतनेवाला कोई भी चतुर व्यक्ति नहीं मिला। अब हमें यहाँ पर कोई ऐसा व्यक्ति मालूम नहीं पड़ता कि जो अपनी वीणावादन से गन्धर्वसेना को विवाह ले। इसीलिए हम सबको एक चिन्ता लगी रहती है।

एक दिन मैंने* एक निमित्तज्ञानी मुनिराज से पूछा कि गन्धर्वसेना को वीणावादन में कौन जीतेगा और उसका भावी पति कौन होगा? तब मुनि महाराज ने मुझे उत्तर दिया कि 'श्रेष्ठिकुमार चारुदत्त जब अपने घर पहुँचेगा, तब उसके यहाँ एक यादवपति कुमार आयेगा, वही गन्धर्वसेना का स्वामी होगा।'**

इसलिए मित्र! आप तो परोपकारी वीर एवं सज्जनोत्तम पुरुष

---

* गन्धर्वसेना सिंहग्रीव की पुत्री नहीं किन्तु बहिन थी। इसीलिए उनके पिता अमितगति विद्याधर (राजा) ने मुनिराज से प्रश्न किया था, न कि सिंहग्रीव ने। यथा:—

चारुदत्त श्रुणु श्रीमानेकदावधिचक्षुषं।
राजेति पृष्टवान् भर्ता के मे दुहितुरीक्ष्यते॥ –हरिवंशपुराण

** मुनिराज के यह वचन सुनकर पिताजी ने गन्धर्वसेना के विवाह का निश्चय आपके ऊपर ही स्थिर रखा। किन्तु पिताजी तो दीक्षा लेकर मुनि हो गये हैं, इस समय अब वे हैं नहीं। इसलिए उनके मंतव्यानुसार आप ही मालिक हैं। जैसा जो आपको उचित प्रतीत हो सो करिये। यथा —

इत्याकर्ण्य तदा तेन राजा प्रवृजतापि च।
स्थिरीकृतमिदं कार्ये प्रमाणं त्वं ततोऽसि नः॥ –हरिवंशपुराण

हैं। कृपया आप गन्धर्वसेना को अपने साथ ले जाइये और वीणावादन में जो योग्य पुरुष इसे जीत ले, उसके साथ इसका विवाह सम्बन्ध करा दीजिए। गन्धर्वसेना अब विवाहयोग्य भी हो चुकी है। वह विवेकपूर्वक अपने भावी पति को चुन सकेगी। इसलिए अब आप ही इसे अपने नगर में लिवा जाइये। इस प्रकार अनेक तरह से समझाकर और चारुदत्त की स्वीकृति प्राप्त करके गन्धर्वसेना उन्हें सौंप दी तथा चलने की तैयारी की।

जिस समय चारुदत्त गन्धर्वसेना को लेकर अपने नगर की ओर प्रयाण करने लगे, उस समय विद्याधरों ने चारुदत्त को विवाही गई अपनी-अपनी कन्याओं की भी विदा उनके साथ कर दी। चलते समय किसी ने चारुदत्त को भेंट में हाथी, घोड़ा दिये तो किसी ने रथ पयादे दिये। किसी ने चौकर-चाकर दिये तो किसी ने कर कंकण और मुक्ताहार अर्पण किये। किसी ने छत्र, चमर और हाथी आदि भेंट किये तो किसी ने अतुल भण्डार सौंप दिया। किसी ने नाना प्रकार के वस्त्राभरण दिये तो किसी ने रत्नजड़ित सिंहासन, मुकुट और छत्रादि अर्पण किये। किसी ने हीरा, माणिक, मोती, पन्ना और अनेक प्रकार के जवाहरात दिये तो किसी ने दल बल सहित महान सैन्य देकर अपनी भक्ति का प्रदर्शन किया।

इस प्रकार एक से एक बढ़कर भेंटें दी जाने के बाद बड़े ही ठाठवाट और गाजेबाजे के साथ चारुदत्त की विदा की गई। जाते समय सिंहग्रीव और वराहग्रीव ने गन्धर्वसेना को तिलक किया और बड़ी धूमधाम के साथ विदा कर दी। विदा करते समय

गन्धर्वसेना की माता का हृदय भर आया, इसलिए उसने अपनी पुत्री को गले लगा लिया और आँखों से गरम-गरम आँसू बहाती हुई बोली कि बेटी! तू परदेश जा रही है। तेरे बिछोह के कारण मुझे भारी दुःख हो रहा है। अब मैं तेरे बिना यहाँ अकेली कैसे रहूँगी? तेरे बिना मुझे इस घर में कैसे चैन पड़ेगी? कौन जाने अब तू मुझे कब मिलेगी! इस प्रकार दुःख और विलाप करती हुई माता ने गन्धर्वसेना को अपनी छाती से लगाकर बहुत ही मोह प्रगट किया और आकुल-व्याकुल सी होकर खूब रोने लगी! इसी प्रकार अन्य विद्याधर पुत्रियों को उनकी माताओं ने अनेक प्रकार की सीख देकर विदा किया।

इस प्रकार जब चारुदत्त ने अपने नगर की ओर प्रयाण किया, तब नगरजनों के मन में भी भारी दुःख हुआ। उस समय अनेक स्नेही मित्र और नगर के प्रतिष्ठित जन चारुदत्त को गले लगाकर भेंट करने लगे। चारुदत्त गन्धर्वसेना और अपनी विद्याधर पत्नियों को साथ लेकर सुसज्जित विमान में बैठ गये।* साथ ही सिंहग्रीव आदि विद्याधर भी सैन्य सहित अपने-अपने वायुयानों में बैठकर चल दिये। आकाशमार्ग से विमान चम्पापुरी की और उड़ते जा

---

* जाते समय चारुदत्त ने अपने मित्र उन दो देवों को स्मरण किया था। स्मरण करते ही वे दोनों देव निधियाँ लेकर वहाँ आ गये। और अपने सुन्दर 'हंस विमान' में बैठाकर गन्धर्वसेना सहित चारुदत्त आदि को चम्पापुरी ले गये थे। यथा —

मित्रकार्यसमुद्युक्तौ मित्रदेवौ मया स्मृतौ।
स्मरणादेव संप्राप्तौ निधिहस्तौ ममांतिकं॥
चारुहंसविमानेन साकं गंधर्वसेनया।
आनीय मित्रदेवौ मां भूत्या विस्मयनीयया॥ – हरिवंशपुराण

रहे थे और साथ ही विविध प्रकार के बाजे बजते जाते थे। उस समय नगरजनों को ऐसा प्रतीत होता था, जैसे स्वर्गों में देवगण ही आनन्द क्रीड़ा कर रहे हों।

आकाशमार्ग में वे सब आनन्द विनोद करते हुए चम्पापुरी नगरी में जा पहुँचे। वे सब नगर के पास ही गाजे-बाजे के साथ उतरे और आनन्दोत्सव मनाने लगे। जब चम्पापुरी के राजा विमलवाहन को यह खबर हुई, तब वह अपने इष्टमित्र और नगरजनों के साथ चारुदत्त से मिलने के लिये वहाँ आया। चारुदत्त ने राजा को आया हुआ देखकर उसकी यथायोग्य विनय की और अनेक बहुमूल्य वस्तुएँ भेंट कीं। इस प्रकार चारुदत्त का सज्जनोचित्त व्यवहार देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और चारुदत्त को पुनः पूर्व स्थिति में देखकर खूब ही हर्षित हुआ। इसी हर्ष में राजा विमलवाहन ने चारुदत्त को अपना आधा राज्य सौंपकर अपने हाथ से तिलक किया। और नगर में बड़ी ही धूमधाम के साथ आनन्दोत्सव मनाया।*

---

* हरिवंशपुराण में ऐसा कोई कथन नहीं है। चारुदत्त को आधा राज्य दिये जाने आदि की बात मात्र इसी कथन में है। हरिवंशपुराण में तो मात्र इतना ही कथन है कि देवों ने चारुदत्त को चम्पापुरी पहुँचाकर पूर्ण व्यवस्था की और उन्हें अक्षय निधियाँ देकर भक्तिपूर्वक नमस्कार किया तथा अपने स्थान को चले गये। यथा —

सुव्यवस्थाप्यं चंपायामक्षयैंनिधिभिः सह।
नत्वा देवौ गतौ स्वर्गं खेचरौ च निजास्पदं॥ -हरिवंशपुराण

इस प्रकार नगरी में जाकर चारुदत्त सीधे अपने मामा, माँ, स्त्री और कुटुम्बी आदि से मिले और आनन्दपूर्वक रहने लगे। यथा —

मातुलं मातरं पत्नीं बंधुवर्गं च सादरं।
दृष्ट्वा तुष्टमतिं प्राप्तं प्राप्तोऽहं सुखितां परं॥ - हरिवंशपुराण

इस आनन्दोत्सव में नगर और बाजार की शोभा की गई तथा विविध प्रकार के बाजों से सारा नगर गूँज उठा। कहीं भेरी, तूर पटह और शहनाई बज रही थी तो कहीं अनेक प्रकार की वाजिंत्र एक ही साथ (बैंड) बजाये जाते थे। कहीं निशान घूम रहे थे तो कहीं नृत्यादि हो रहे थे। इस प्रकार सभी नगरजनों ने खूब ही आनन्द मनाया और याचकों को दान दिया।

इस प्रकार आनन्दोत्सवसहित चारुदत्त ने अपने चतुरंग दल के साथ नगर में प्रवेश किया। उस समय नगर में जो उत्साह था, वह वर्णन नहीं किया जा सकता। उस समय नगरजन इस प्रकार चर्चा कर रहे थे कि वास्तव में यह सब पुण्य का ही प्रभाव है कि चारुदत्त अपनी पूर्व स्थिति में फिर से आ गया। जो भानुदत्त का पुत्र (चारुदत्त) भिखारी से भी बुरी स्थिति में नगर छोड़कर चला गया था, वही महान विभूति को लेकर पुनः इसी नगर में राज सन्मानित होकर आया है। पुण्य के माहात्म्य को कौन वर्णन कर सकता है? पुण्य के प्रभाव से ही शुभ गति मिलती है और पुण्य के द्वारा ही विभव सम्पत्ति प्राप्त होती है। पुण्य ही त्रिभुवन में सारभूत है। पुण्य के प्रताप से शत्रु भी मस्तक पर धरे धरे फिरता है और पुण्य के प्रभाव से ही शत्रु दल का नाश होता है। पुण्य के माहात्म्य से ही यश और आनन्द की वृद्धि होती है तथा पुण्य के प्रसाद से ही धनबल, विद्याबल तथा रूप की प्राप्ति होती है। पुण्य (अर्थात् पवित्रता शुद्धभाव) के माहात्म्य से कर्मों का नाश होता है और पुण्य के द्वारा ही ज्ञान का प्रकाश होता है। पुण्य की महिमा अपरम्पार है। पुण्यवान के लिये कोई भी वस्तु

अलभ्य नहीं है। यहाँ तक कि मोक्षप्राप्ति में भी पुण्य का आधार है। इसलिए सुख चाहनेवाले सभी मनुष्यों को पुण्य संचय का प्रयत्न करना चाहिए।

ज्ञात हो कि पुण्य शब्द का प्रयोग कषाय की मन्दतारूप शुभभाव के अर्थ में तथा पवित्रतारूप शुद्धभाव—दोनों के अर्थ में होता है। शुभभावरूप पुण्य सांसारिक भोगोपभोग और पवित्रतारूप पुण्य मोक्ष प्रदाता है—ऐसा समझना चाहिए।

पुण्यवान चारुदत्त ने आनन्दपूर्वक नगर में प्रवेश किया और सबसे पहिले वे अपने साथियों के साथ जिनमन्दिर में गये तथा दर्शन पूजन करके विशेष पुण्य सम्पादन किया। बाद में धरोहर रखा हुआ अपना मकान द्रव्य देकर छुड़ा लिया और उसमें अपनी माता तथा स्त्री को बुलवा लिया। उनके आते ही चारुदत्त ने सबसे पहले माता के चरणों में नमस्कार किया और आशीर्वाद प्राप्त करके उसी के पास बैठ गया। बहुत वर्षों से बिछुड़े हुए माता और पुत्र का मिलाप उस समय करुणा और आनन्द की गंगा-जमुनी धारा प्रगट कर रहा था। पुत्र को देखकर माता का हृदय फूला न समाया और उसकी आँखों से आनन्दाश्रु बहने लगे। उधर चारुदत्त के भी हर्ष का पार नहीं था।

माता से मिलने के बाद चारुदत्त अपनी पत्नी से मिले। और कुशल समाचार के बाद अनेक प्रकार से आनन्द विनोद की बातें करने लगे। बाद में चारुदत्त ने अपनी माता को सिंहासन पर विराजमान किया और उसके बाद अपनी पत्नी को बैठाया और फिर आनन्द एवं उत्साहपूर्वक अपनी पत्नी सुमित्रा को विधिसहित

पट्ट बाँधकर पट्टरानी का पद दिया तथा उसके उपलक्ष्य में बड़ा भारी उत्सव मनाया।

★ ★ ★

वसन्ततिलका से विवाह

[1]अहो चेष्टितमार्यस्य महौदार्यसमन्वितं।
अहो पुण्यबलं गण्यमनन्यपुरुषोचितं॥

–हरिवंशपुराण

उधर वेश्यापुत्री वसन्ततिलका चारुदत्त के वियोग होने के बाद यह प्रतिज्ञा किये बैठी थी कि इस भव में तो मेरे पति चारुदत्त ही हैं, और उनके सिवाय सभी पुरष पिता और भाई के समान हैं। वेश्या वसन्ततिलका की यह दृढ़ प्रतिज्ञा नगर भर में फैल गयी। तब राजा और प्रतिष्ठित प्रजाजनों ने चारुदत्त को समझाया कि आप वसन्ततिलका को स्वीकार करिये। कारण कि उसके आपके सिवाय किसी भी अन्य पुरुष की इच्छा तक नहीं की है और अणुव्रत धारण करके आपकी माता की सेवा करती हुई उन्हीं के पास रहती है।[2] और वेश्या वसन्ततिलका को सहर्ष

1. अर्थ :– उत्तम पुरुषों की उदारतापूर्ण चेष्टाओं को धन्य है तथा अन्य पुरुषों के लिये दुर्लभ किन्तु ऐसे महापुरुषों को प्राप्त पुण्य के लिये भी धन्य है।

2. हरिवंशपुराण आदि में राजादि द्वारा समझाने की कोई बात नहीं है। किन्तु चारुदत्त ने स्वयं ही वसन्ततिलका को उदारतापूर्वक स्वीकार किया था। स्मरण रहे कि अन्य ग्रन्थों में वसन्ततिलका को 'वसन्तसेना' के नाम से लिखा है।

स्वीकार किया।* तथा उसे अपनी द्वितीय पट्टरानी पद पर स्थित किया।!

इसके अतिरिक्त अन्य विद्याधर कन्याओं को भी यथायोग्य पद दिया और आनन्दपूर्वक अपना गृहीजीवन बिताने लगे। इस प्रकार चारुदत्त अपने पूर्व दु:खों को भूलकर सुखपूर्वक राज्य करने लगे। उनके साथ जो विद्याधर आये थे, उनका भी चारुदत्त ने यथोचित आदर-सत्कार किया और सबको प्रीतिभोज दिया। सिंहग्रीव विद्याधर के साथ चारुदत्त का दिन दूना और रात चौगुना प्रेम बढ़ता गया और वे सब एक ही साथ रहने लगे। इस प्रकार बहुत दिन व्यतीत होने पर दोनों विद्याधरों ने एक दिन चारुदत्त से निवेदन किया कि हमें आपके यहाँ रहते हुए बहुत दिन हो गये हैं। अब कृपया हमें अपने नगर को जाने की आज्ञा दीजिए।

चारुदत्त ने विद्याधरों के जाने की इच्छा जानकर सखेद कहा

---

* 3. तां शुश्रूषाकरीं श्वश्रूं मदणुव्रतसंगतां।
श्रुत्वा वसन्तसेनां च प्रीत: स्वीकृतवानहं॥ – हरिवंशपुराण

वेश्या वसन्तसेना अपनी माँ का घर त्यागकर मेरे (चारुदत्त के) घर आ गयी थी और उसने आर्यिका के पास जाकर श्राविका के व्रत (अणुव्रत) धारण कर मेरी माँ और स्त्री की सेवा की थी। इसलिए मैं (चारुदत्त) उससे भी मिला और उसे सहर्ष अपनाया (हरिवंशपुराण भाषा टीका पं० गजाधरलालजी शास्त्री कृत)।

इसी बात को स्व० पण्डितप्रवर दौलतरामजी ने अपनी भाषाटीका वचनिका में इस प्रकार लिखा है —

''अर यह कलिंगसेना वेश्या की पुत्री वसन्तसेना पतिव्रता मेरे परदेश गये पीछे अपनी माता का गृह छोड़ि आर्यानिके निकट श्राविका के व्रत धारण कर मेरी माता के निकट आय रही। मेरी माता की अर स्त्री की तानें अति सेवा करी, सो दोऊ ही वासूँ अति प्रसन्न भई अर जगत में ताका यश बहुत भया, सो मैं भी अति प्रसन्न होय ताहि अँगीकार करता भया।''

कि मित्रों! आप जाने की बात मत करिये। आपकी इस इच्छा को जानकर मुझे बहुत दु:ख होता है। किन्तु जब देखा कि विद्याधरों का विशेष आग्रह है, तब उन्हें सन्मानपूर्वक विदा कर दिया।* विद्याधरों ने जाते समय चारुदत्त का प्रेमपूर्वक आभार माना और कहा कि आप गन्धर्वसेना के विवाह की सुयोग्य व्यवस्था करियेगा।

इस प्रकार विद्याधरों के चले जाने के बाद चारुदत्त ने गन्धर्वसेना के स्वयंवर की तैयारी की और देश देशान्तर में अपने दूत भेजकर सब जगह घोषणा करवा दी कि जो पुरुष राजकन्या गन्धर्वसेना को वीणावादन में जीतेगा उसके साथ उसका विवाह किया जायेगा। यह सुनकर एक से एक बढ़कर राजा-महाराजा वहाँ आकर एकत्रित हुए। उन्हीं में यादववंशी कुमार वसुदेव भी आये थे। सब आकर स्वयंवरशाला में यथास्थान बैठ गये।

उधर गन्धर्वसेना को राजाओं के आने का समाचार सुनाकर सखियाँ स्वयंवर-मण्डप में चलने की प्रेरणा करने लगीं। तब गन्धर्वसेना ने निराशापूर्ण वाणी में कहा कि सखियो! यह सारा आडम्बर व्यर्थ ही किया जा जा रहा है। कारण कि इस पृथ्वीतल पर ऐसा कोई भी पुरुष प्रतीत नहीं होता जो मुझे वीणावादन में जीत सके। फिर भी सखियों का अति आग्रह देखकर गन्धर्वसेना उठी और हाथ में वीणा लेकर स्वयंवर-मण्डप की ओर चल दी।

जब वह गन्धर्वसेना राजमार्ग से स्वयंवर-मण्डप की ओर

* हरिवंशपुराण में विद्याधरों और देवों को उसी समय वापिस गया हुआ लिखा है। जब वे चारुदत्त को नगर में पहुँचा चुके थे।

जा रही थी, तब उसे देखने के लिये भारी भीड़ लगी थी। नगर के स्त्री-पुरुष उसके रूपलावण्य को देखकर दाँतों तले ऊँगली दबाने लगे। कोई कहता था कि यह तो सुरकन्या है, कोई कहता था कि नहीं, यह तो नागकुमारी सी प्रतीत होती है। कोई कहता था कि यह विद्याधरी है और कोई कहता था कि यह स्वर्गलोक से अप्सरा ही भूतल पर उतर आई है।

वास्तव में गन्धर्वसेना इतनी सुन्दर थी कि नगरजनों को अनेक प्रकार के भ्रम उत्पन्न कर सकती थी। उसका मुख पूर्णमासी के चन्द्रमा समान था, शरीर कान्ति स्वर्ण के समान थी, बड़ी-बड़ी मनोहर एवं लालिमापूर्ण आँखें छमली जैसी सुन्दर एवं मृग की आँखों को भी मात करनेवाली थीं, आँखों की भृकुटी तो मानों कामदेव का टेढ़ा मनुष्य ही थीं, उसके मस्तक पर सुकोमल एवं श्याम केश बहुत ही शोभित होते थे। ऊँची उठी हुई लम्बी नाक तो ऐसी सुन्दर लगती थी, जैसे किसी चतुर कारीगर ने सोने की ही बनाकर लगा दी हो। उसकी दन्तपंक्ति खिले हुए अनारदाने जैसी सुशोभित होती थी।

कानों में कुण्डल ऐसे लगते थे, जैसे विधाता ने स्वयं अपने हाथों से ही बनाये हों। उसके गले में जगमगाती हुई मोतियों की माला और भी अधिक शोभित हो रही थी। उसके स्तनद्वय स्वर्णकलश के समान, पतली कमर केहरि के समान, बाहुयुगल कमल की लता समान और जंघा कदलीस्तम्भ के समान मालूम होती थी। उसकी मन्द-मन्द चाल हंस की गति जैसी मालूम होती थी। उसका शरीर इतना सुगन्धित था कि पवन का झकोरा

आते ही चारों ओर वातावरण सुगन्धित हो जाता था। इतने पर भी उसने अपने शरीर पर दिव्याभूषण और सुन्दर वस्त्र पहिने थे, इसलिए उसकी शोभा और भी दूनी हो गयी थी।

इस प्रकार सुसज्जित सुन्दरी गन्धर्वसेना अपने हाथ में वीणा लेकर स्वयंवर-मण्डप में पहुँची। उसकी सुन्दरता देखकर उपस्थित राजागण आश्चर्यचकित हो मुग्ध हो गये। उसकी प्रभावक मूर्ति को देखकर कई प्रतिस्पर्धी तो वीणा हाथ में लेकर यों ही रह गये और कितने ही हिम्मत हारकर नीचे मुख किये बैठे रहे। किसी ने यदि वीणावादन का साहस किया भी तो वे अपनी कुछ भी चलती न देखकर भाग्य पर क्रुद्ध होने लगे। कुछ लोग तो मात्र गन्धर्वसेना की प्रशंसा ही करके रह गये और इस प्रकार बहुत सा समय व्यतीत हो गया।

थोड़ी देर के बाद वसुदेवकुमार ने गन्धर्वसेना को सम्बोधित करते हुए कहा कि सुन्दरी! तुम जिस वीणावादन में चतुराई बतला रही हो, तनिक उसके विषय में कुछ विवेचन तो करो। बताओ तो सही कि वीणा कितनी पंक्ति की होती है? उसके बजाने का उत्तम समय कौन सा है? इत्यादि।

यह सुनकर गन्धर्वसेना का मद उतर गया और वह बोली कि चतुर कुमार! मुझे वीणा के गुणों का ज्ञान नहीं है। कृपया ही समझाइये कि आपने कितने प्रकार का वीणा राग गुरु के पास सीखा है। तब कुमार ने कहा कि राजकुमारी! वीणा के ग्यारह गुण हैं। देखो, मैं उन सब रागों को तुम्हारे सामने सुनाता हूँ। यों कहकर वसुदेवकुमार ने बड़े ही कुशलतापूर्वक वीणा बजाई

और गन्धर्वसेना को मुग्ध कर लिया।*

इस चातुर्यप्रदर्शन के कारण गन्धर्वसेना लज्जित हो गयी और नतमुख होकर खड़ी हो गयी। वसुदेवकुमार की वीणा से मात्र गन्धर्वसेना ही मुग्ध नहीं हुई थी किन्तु पशु-पक्षी तक मोहित हो गये थे। यहाँ तक कि काल समान भुजंग-सर्प भी मन्त्रमुग्ध हो गये। वहाँ बैठे हुए प्रतिस्पर्धी राजागण भी अन्त:करण से वसुदेव की प्रशंसा करने लगे और एक-एक करके सब विदा हो गये।

उधर चारुदत्त ने विवाहोत्सव मनाने की तैयारी कराई और नगर भर में आनन्द फैल गया। कहीं विविध प्रकार के बाजे बजने लगे तो कहीं गायन संगीत और नृत्यादि होने लगे। चारुदत्त ने अपने महल के आगे एक विशाल विवाहमण्डप बनवाया। उसमें मोतियों की वन्दनवारें लगवाईं और मोती माणिक आदि से चौक पुरवाये। नगर की युवतियाँ आकर वहाँ पर मधुर-मधुर गीत गाती थी और गृहस्थाचार्य विवाह की तैयारी कर रहे थे।

दूल्हा वसुदेवकुमार ने भी अनेक प्रकार से श्रृंगार करके विवाह की तैयारी की। और रत्नजड़ित आभूषण तथा बहुमूल्य वस्त्रों से सुसज्जित होकर विवाह मण्डप में आये। एक ओर वसुदेवकुमार कामदेव के समान शोभित हो रहे थे तो दूसरी ओर गन्धर्वसेना सुरकन्या जैसी मालूम होती थी। बहुत कुछ आनन्दोत्सव और

* हरिवंशपुराण में लिखा है कि गन्धर्वसेना द्वारा दी गई अनेक वीणाओं को सदोष बताकर वसुदेवकुमार ने उसे लज्जित कर दिया था। बाद में गन्धर्वसेना ने वीणा-राग के विषय में प्रश्न किया तब वसुदेवकुमार ने बड़ी ही विद्वत्ता से उत्तर दिया। हरिवंशपुराण में यह वर्णन ११९ श्लोकों में खूब विस्तार से है। उसे देखने से कुमार का अद्वितीय वीणाचातुर्य मालूम होता है।

मंगल गीतों के बाद दोनों का विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया गया। विवाह के समय चारुदत्त ने वासुदेवकुमार को करकंकण, मुक्ताहार, छत्र, चमर, हाथी, घोड़ा और अनेक प्रकार की बहुमूल्य वस्तुएँ भेंट में दीं और बड़े ही उत्साह के साथ उनकी विदा कर दी।

★ ★ ★

चारुदत्त का वैराग्य

जिनेन्द्रचन्द्रोदितमस्तदूषणं कषायमुक्तं विदधोति यस्तपः।
न दुर्लभं तस्य समस्तविष्टपे प्रजायते वस्तु मनोज्ञमीप्सितम्॥

– अमितगतिः

इस प्रकार गन्धर्वसेना के विवाह से निवृत्त और निश्चिन्त होकर चारुदत्त आनन्दपूर्वक राज्य करते हुए न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करने लगे और अपनी चौतीस स्त्रियों के साथ* आनन्दोपभोग करते हुए कालयापन करने लगे। साथ ही वह जिनेन्द्रपूजादि अपने कार्य भी नियमित रूप से करते थे। महाराजा चारुदत्त ने अपनी न्याय-निपुणता एवं प्रजा-वात्सल्य के कारण सारे जग में यश प्राप्त कर लिया। वास्तव में यह सब पुण्य की ही महिमा है कि जो पुरुष एक दिन कंगाल स्थिति में इधर-उधर मारा-मारा फिरता था, वही समय आने पर राजपद पर विराजित हो आनन्द भोग करने लगा। चारुदत्त ने अपनी न्याय-निपुणता के साथ बहुत समय तक राज्य संचालन किया।

---

* हरिवंशपुराण और आराधना कथाकोश में ३४ स्त्रियों का कोई उल्लेख नहीं है, किन्तु सुमित्रा और वसन्तसेना का ही नाम आया है।

एक समय की बात है कि महाराजा चारुदत्त प्रसन्नचित्त होकर राज्यसिंहासन पर बैठे थे। दरबार भरा हुआ था। अमात्य भृत्यगण यथास्थान बैठे हुए थे। चारुदत्त के मस्तक पर मणिमय मुकुट शोभा दे रहा था। उसका तेज सूर्य के समान था तथा अनेक प्रकार के आभूषणों के कारण वह इन्द्र के समान मालूम होते थे और उनके मस्तक पर मनोहर चमर ढुर रहे थे। इतने में कोई निमित्त पाकर उन्हें अकस्मात् वैराग्य उत्पन्न हो गया और वे विचारने लगे कि इस संसाररूपी भयानक कूप में पड़े हुए मुझे बहुत समय व्यतीत हो गया। भोगविलास में यह मानवजीवन पूर्ण हुआ जाता है। मैं आज मनुष्यों के ऊपर कल्पित राज कर रहा हूँ और इन लोगों ने मुझे राजा मान रखा है। किन्तु वास्तव में यह राज्य किस काम का? सच्चा राज्य तो वह है कि जब मोक्षप्राप्ति करके सर्वोच्च पद प्राप्त किया जाये। जो कायर पुरुष अपने मन पर ही राज्य नहीं कर सकता, वह दूसरों पर क्या राज्य करेगा?

इस प्रकार विचार कर चारुदत्त ने निश्चय किया कि अब इस जंजाल को छोड़कर किसी वीतराग मुनि के पास मुनिदीक्षा लेकर आत्म-कल्याण करना चाहिए। बस, फिर क्या था। चारुदत्त ने उसी समय अपने कुटुम्बीजनों को बुलाया और उन्हें राज्यभार सौंपकर* वन की ओर चल दिए और वहाँ जाकर किसी मुनिराज

* आराधना कथाकोश में लिखा है कि चारुदत्त ने विरक्त होकर अपने 'सुन्दर' नाम के पुत्र को श्रेष्ठिपद सौंपकर दीक्षा ली थी। यथा —

ततो वैराग्यमासाद्य सुन्दराख्यसुताय च।
दत्वा श्रेष्ठिपदं पूतं दीक्षां जैनेश्वरीं श्रितः॥

इससे मालूम होता है कि चारुदत्त के कोई सुन्दर नाम का पुत्र भी था और वे राजा नहीं किन्तु सेठ ही थे।

के समीप जिनदीक्षा धारण कर ली। दीक्षा धारण करते ही उनने सब कपट कषाय का त्याग कर दिया, जिससे उन्हें समता रस की प्राप्ति हुई और सांसारिक सुख की अपेक्षा कई गुना आनन्द देनेवाले अलौकिक सुख का अनुभव होने लगा।

चारुदत्त बड़े ही दृढ़प्रतिज्ञ एवं दृढ़ व्यवसायी थे। इसलिए उनने २८ मूलगुणों का बड़ी ही तत्परता से पालन किया। वे महीने-महीने के उपवास करने लगे और कठोर कायक्लेश सहने लगे। वे रत्नत्रय की आराधना करते हुए योग निरोध करते थे और दस धर्मों को धारण कर समाधि की भावना भाते रहते थे। वे सर्वदा यही विचार करते थे कि इस जीव का कल्याण एकमात्र धर्म से ही हो सकता है। पंच परमेष्ठी की शरण सिवाय इसका कोई सच्चा सहाई नहीं है। निज आत्मा का ध्यान करने से ही कर्मों की निर्जरा होती है।

★ ★ ★

सर्वार्थसिद्धि गमन

संन्यासविधिना कालं कृत्वासौ शल्यवर्जितः।
स्वर्गलोकं समासाद्य देवो जातो महर्द्धिकः॥

-आराधना कथाकोश

इस प्रकार विचार करते हुए चारुदत्त ने बहुत तप किया और आयु के अन्त समय समाधिमरण करके सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र पद प्राप्त किया। वास्तव में यह अहमन्द्रि पद महापुण्य के प्रताप

से प्राप्त होता है। वहाँ पर दिव्य तेजस्वी शरीर होता है और अन्तर्मुहूर्त में ही पूर्ण यौवन प्राप्त हो जाता है। वहाँ पर अनेक प्रकार के रत्नजड़ित वस्त्राभूषण पहिनने को मिलते हैं। और सब अहमिन्द्र निरन्तर धर्मचर्चा में अपना समय व्यतीत किया करते हैं। चारुदत्त ने इस प्रकार के अपूर्व स्थान को अपने पुण्योदय से प्राप्त कर लिया।

चारुदत्त के साथ वसन्ततिलका तथा अन्य अनेक स्त्री-पुरुषों ने भी दीक्षा धारण की थी। वे सब अपने-अपने पुण्य और तपोबल के अनुसार शुभगति को प्राप्त हुए हैं। चारुदत्त का जीव आज भी सर्वार्थसिद्धि में सुख के साथ रहता है। अनेक प्रकार के उत्तमोत्तम भोगों को भोगता है। सुमेरु और कैलाशपर्वत आदि स्थानों के जिनमन्दिरों की यात्रा करता है। विदेहक्षेत्र में साक्षात् तीर्थंकर केवली भगवान की स्तुति पूजा करता है और उनका सुख देनेवाला पवित्र उपदेश सुनता है।

तात्पर्य यह है कि उस जीव का सारा समय सर्वदा धर्मसाधन में ही व्यतीत होता है। इसी जिन भगवान के उपदेश किये हुए निर्मल धर्म की इन्द्र नागेन्द्र विद्याधर चक्रवर्ती आदि सभी भक्तिपूर्वक उपासना करते हैं। यही धर्म स्वर्ग और मोक्ष का देनेवाला है। इसलिए यदि तुम्हें श्रेष्ठ सुख की चाह है तो तुम भी इसी धर्म का आश्रय ग्रहण करो।*

---

* तत्र भोगान् सुभुञ्जानः स्वर्गलोकसमुद्भवान्।
कुर्वन् यात्रां जिनेन्द्राणां महास्वर्णाचलादिषु॥
साक्षात्तीर्थंकरानुच्चैः केवलज्ञानलोचनान्।
चारुदत्तचरो देवः समभ्यर्चत्सुभक्तितः॥
शृण्वन् जैनेश्वरीं वाणीमाप्तेभ्यः शर्मदायिनीन्।
इत्यादिधर्मसंसक्तः स देवः सुखतः स्थितः॥

सब कथाओं और ग्रन्थों का यही सार है कि धर्म सुख शान्ति का देनेवाला है और पाप जगत के दु:खों में फँसानेवाला है। पाप और व्यसनों में फँसकर चारुदत्त जैसा ज्ञानी विवेकी श्रेष्ठ कुलवाला जीव मारा-मारा फिरता है, दर-दर का भिखारी बनता है, जनता की दृष्टि में गिर जाता है, और आत्मपतन करके अपने स्वर्गीय जीवन को नारकीय जीवन बना लेता है; वही जीव धर्म धरण करके पाप पुंज का नाश करता है, ज्ञान का प्रकाश करता है, लोकपूजित हो जाता है, और स्वपर हित करता हुआ सर्वार्थसिद्धि का सुख प्राप्त कर लेता है।

धर्म की महिमा अपरम्पार है। यदि कोई निर्धन हो, कुएँ या समुद्र में गिर पड़ा हो, महान दुर्लंघ्य पर्वत, वन या द्वीप में जा फँसा हो, तो उसके पाप के नाश होने पर बात की बात में धर्म के प्रभाव से सब विघ्न दूर हो जाते हैं और उसे लक्ष्मी प्राप्त हो जाती है। इसलिए जो मनुष्य लक्ष्मी और सुख के अभिलाषी हैं, उन्हें जिनेन्द्र कथित चिन्तामणि रत्न के समान श्रेष्ठ धर्म की आराधना करना चाहिए।

क्षीणार्थोऽपि पयोधिमप्यधिगतः कूपावतीर्णोऽप्यतो।
दुर्लंघ्येऽपि च संवरन् गिरितटे द्वीपांतरे वा पुमानू॥
लक्ष्मीं धर्मसखः प्रयाति निखिलां पापव्यपायाद्यत-
स्तद्धर्मं जिनबोधितं बुधजनाश्रिन्वंतु चिन्तामणिं॥

समाप्त

श्रीमत्सारसुरेन्द्रचन्द्रनिकरैर्नागेन्द्रसत्खेचरैः।
षट्खण्डाधिपभूचरैश्च नितरां भक्त्या सदाभ्यर्चितम्॥
धर्मं श्रीजिनभाषितं शुचितरं स्वर्गापवर्गप्रदं।
नित्यं सारसुखाय शर्मनिलयं सन्तः श्रयन्त्वंजसा॥ -आराधना कथाकोश

कविश्री बखतावरमलजी कृत—

चारुदत्त सेठ की कथा

॥ मंगलाचरण ॥

॥ सोरठा ॥

देवनकर पूजन्त, प्रभु के चरन सरोज।
कविनमि कथा भनन्त, चारुदत्त वर सेठ की ॥ 1 ॥

॥ पद्धडी ॥

चम्पापुर नगरी अति रसाल, तहँ सूरसेन नृप है विशाल।
ताके इक सेठ जु भान नाम, ता गेह सुभद्रा नाम भाम ॥ 2 ॥

सो पुत्र हेत पूजे कुदेव, बहु भांति करे ताकी जु सेव।
तौभी सुत नहि भयो सेठ भौन, कुश्चित् सुरते लहि सिद्ध कौन ॥ 3 ॥

इक दिन सुख थान जिनेश धाम, वंदन को पहुँची सेठ वान।
तहँ जुग चारन मुनि अति दयाल, वंदे सेठानी नाय भाल ॥ 4 ॥

फिर वच भाषे इन दुःख लीन, हो स्वामी तुम जग में प्रवीन।
मोको तप श्री होवे कि नाह, प्रभु भाषो जो संशय पलाय ॥ 5 ॥

इसके वच सुनके ज्ञान चक्ष, याके मन की जानी प्रत्यक्ष।
तब कह्यो सुता सुन ले अवार, मिथ्या मत की तू सेवा टार ॥ 6 ॥

तेरे सुत होवेगो महान्, विदुसन सुख दाता ज्ञानवान।
इस निश्चयकर निज चित्त माहिं, यामें संशय रंचक जु नाहिं ॥ 7 ॥

॥ दोहा ॥

श्री मुनिवरकै वचन सुन, नमन कियो सिर नाय।
यह सेठानी हर्षयुत, तब ही निज गृह आय ॥ 8 ॥

ता पीछे भगवत कथित, धर्म गहो धर राग।
केतेयक दिन के विषय, पुत्र भयो बड़भाग॥ 9॥

गुण उज्वल धीमान अति, चारुदत्त तिस नाम।
उत्सव कीनो सेठजी, नगर विषय अभिराम॥ 10॥

॥ चौपाई॥

गुण युत वृद्ध भयो इह बाल, जग मांही है पुन्य रसाल।
या करके क्या क्या नहिं होय, दिन दिन मंगल ताघर जोय॥ 11॥

सर्वारथ नामा इस भाम, मित्रवती पुत्री तिस धाम।
याकू चारुदत्त बुधवान, व्याहत भयो तात हट जान॥ 12॥

तोपण भी यह आतम शुद्ध, तिय सेवन में धारे बुद्ध।
तब इस मात सुभद्रा जेह, पुत्र मोह वश कीनो येह॥ 13॥

जे जन वेश्या में थे लीन, तिनके संग पुत्र को कीन।
तब ये खोटे संग पसाय, भ्रष्ट भयो सब सुध विसराय॥ 14॥

जे धीमान करे नहिं भूल, खोटी संग पाप को मूल।
चारुदत्त गणका के धाम, द्वादश वर्ष बिताये ताम॥ 15॥

षोडश सहस दीनार मंगाय, देव सन्त सेना को खुवाय।
इक दिन तियके भूषण लाय, गणका के ढिग मन हरषाय॥ 16॥

॥ दोहा॥

गणका की माता तबै, लख आभूषण ये।
पुत्री से कहती भई, अब मम वच सुन लेह॥ 17॥

चारुदत्त धन रहित अब, इसते तज तू प्रीत।
लक्ष्मी जुतते नेह कर, जो हम कुल की रीत॥ 18॥

॥ चौपाई ॥

ऐसे सुन गण का तिह वार, यासों छोड़ दियो तब प्यार।
लोक विषय यह है परतक्ष, गणिका निर्धनकों तहिं इक्ष ॥ 19 ॥

नगर नायका को तज धाम, आयो निज गृह जहाँ थी भाम।
ताके आभूषण कछु लेह, मातुल पास गयो कर नेह ॥ 20 ॥

ताजुत चलो वनज के हेत, देश उलुरवल मांहि सचेत।
जहां मूसरावर्त सुनाम, नगर बसत है अति अभिराम ॥ 21 ॥

तहां कपास खरीदी जाय, चलत भये वोरे भरवाय।
ताम्रलिप्त नगरी को जात, पथ में अगन लगी दुखदात ॥ 22 ॥

ताकर भस्म भई जु कपास, जब यह चित में भयो उदास।
पुन्य विना उद्यम नहिं सिद्ध, क्योंकर पावे प्राणी रिद्ध ॥ 23 ॥

चारुदत्त धर चित उद्वेग, मातुल पूछन गयो यह वेग।
जहां समुद्रदत्त इक सेठ, बैठो प्रोहन ताके हेठ ॥ 24 ॥

ता संग पवन द्वीप में जाय, कष्ट थकी बहु द्रव्य उपाय।
आवे थो निज गेह मझार, पाप उदय तिस भयो अपार ॥ 25 ॥

वारिघ में प्रोहन फट गई, भई सोई विध ना निर्मई।
ऐसे सप्त वार फट पोत, पुन्य विना किम प्रापत होत ॥ 26 ॥

आप वचो कछु पुन्य वसाय, हुती जु इसकी पूरन आय।
सुरु क्च समइक लकड़ी खण्ड, पाकर वारिध तिरो अखण्ड ॥ 27 ॥

राजग्रही के पथ को चलो, तहँ इक धूरत याको मिलो।
विष्णुमित्र परिव्राजक दुष्ट, याको लखि बोलो वच मिष्ट ॥ 28 ॥

मम वच सुन तू पुत्र अबार, अब ही चलियो मेरी लार।
अटवी में परबल है कूप, ताको जान रसायन रूप॥ 29॥
सो ताकू मैं देहूं अबै, जाकर पारिद नाशे सबै।
ताके वच सुन याने कही, वेग तात दिखलाओ सही॥ 30॥
धन लोभी प्राणी जग माहिं, दुरजन पास ठगायो जाहिं।
विष्णुमित्र दण्डी तिहवार, याको लेय गयो निज लार॥ 31॥
भूभ्रत यह वह कूप दिखाय, इक तूंबी ईस कर में दाय।
छींके में बैठाय उतार, रस्सी पकड़ गयो जहां वार॥ 32॥
तहां एक थो बहु दुख लीन, ताने याकूँ मने सु कीन।
चारुदत्त पूछी तू कौन, क्यों यहां पड़ो कहाँ तुझ भौन॥ 33॥

॥ दोहा॥

कूप विषय को मनुष्य तब, बोले वच तिह ठाम।
उज्जैनी नगरी रहूं, धनदत्त वाणिक नाम॥ 34॥
सो हम संगलद्वीप को, गये करन व्योहार।
आवत मो प्रोहण फटो, मैं बच आयो पार॥ 35॥
इस परिव्राजक दुष्ट ने, एही लोभ दिखाय।
तूंको देकर कूप में, दियो मोय उतराय॥ 36॥
तब मैं तूंबी रस भरो, लीनों वाने खींच।
दूजीवर मोहि काढ़ते, काट दियो अधबीच॥ 37॥
सो मैं अन्धे कूप में, पड़ो महा दुख लीन।
रस पीवन काया गली, होहि प्राण अब छीन॥ 38॥

॥ काव्य ॥

ऐसे सुनकर चारुदत्त इम गिरा सुनाई।
क्या रस तूंबा इसे अबै देहों नहिं भाई॥
तब बाने इमि कही अबै जो रस नहिं देगो।
फेकूँगो पाखान पड़ो यहाँ दु:ख सहेगा॥ 39॥

ऐसे सुनकर चारुदत्त कीनी चतुराई।
तूंबो रस को भरो तासको दियो खिंडाई॥
सो उन खेंचो वेग फेर रस्सी लटकाई।
चारुदत्त पाखान तास में दिये बंधाई॥ 40॥

॥ दोहा ॥

आप कूप में जतनते, तिष्ठो चिंतावान।
परिव्राजक रस्सा तबे, काढ़ो जुत पाखान॥ 41॥

जात भयो निज धाम को, ले रस बहुसुखदाय।
कूप विषय के पुरख ते, चारुदत्त बतलाय॥ 42॥

॥ पद्धड़ी ॥

हो भ्रात अवै मोको बताय, कोई भी जीवन को है उपाय।
जो मोहि बतावे तू अवार, तो मैं तोहि देहूं धर्म सार॥ 43॥

इमि कहकर शुभ नवकार मंत्र, सुर शिवदायक दीनो तुरन्त।
सन्यास तनी विधको बताय, ताने गह लीनो चित लगाय॥ 44॥

तब चारुदत्त तें इम कहंत, तुम पुरुष विलक्षण बुद्धिवन्त।
या रस पीवन इक गोह आत, अब तो गई आवेगी प्रभात॥ 45॥

ताकी हम पूंछ गहो महान, ताकर बाहर निसो सुजान।
ऐसी सुनकर तब चारुदत्त, गुण उज्वल चितधारी पवित्त॥ 46॥

सो गोह पूंछ गाढ़ी गहाय, बाहर निकसो छिलगई काय।
अटवी में पहुँचो दु:ख लीन, इच्छापूर्वक फिर गमनकीन॥ 47॥

॥ **चौपाई** ॥

याके तात तनो जो भाय, रुद्रदत्त तहं मिलो सो आय।
कहत भयो सुन पुत्र अवार, तुम चालो अब हमरी लार॥ 48॥
रतनद्वीप सोहे विख्यात, तहां चलें हम तुम मिल सात।
इम कहि धन लोभी अधिकाय, बकरे की तब पीठ चड़ाय॥ 49॥
भूभृत मारग कीनो गौन, भाळ लिखो सो मेटे कौन।
पहुँचे यह परवत के भाल, बोलो रुद्रदत्त विकराल॥ 50॥
अहो पुत्र तू अब सुन लेह, दोनों अज की हनिये देह।
तिनकीं खाल विषय इहिवार, भीतर पेठे लेय कटार॥ 51॥
रतनद्वीपते पक्षी आय, पल भक्षी भेरण्ड इहां आय।
सो हमको ले जावे सही, रतन द्वीप को पटके मही॥ 52॥
ऐसे पापरूप बच कहे, तो पणि चारुदत्त नहिं गहे।
सन्त जनन में भीड़ जु पड़े, तोपण दुराचारतें डरे॥ 53॥
रुद्रदत्त इह दुष्ट अयान, युग बकरे के नाशे प्रान।
जे अति दुष्ट निर्दयी चित्त, क्या क्या काज करे नहिं नित्त॥ 54॥
मरतो अज तिन देखो तवै, चारुदत्त इह कीनो जवै।
ताको मंत्र दियो नवकार, मरन समाधि करायो सार॥ 55॥
धरमी जन की है यह रीत, पर उपकार करे यह नीत।
तब दोनों पैठें भांथड़ी, वे भेरुण्ड आय तिस घड़ी॥ 56॥
चोंच विषय धर चले तुरन्त, अबुध ऊपर गमन करन्त।
और भेरुण्ड पहुँचे आय, इनसेती वे युद्ध कराय॥ 57॥

॥ दोहा ॥

रुद्रदत्त की भांथड़ी तजी भिरुण्ड तुरन्त।
सो वारिध में गिर मरो, खोटी योनि लहंत॥ 58 ॥

पापी शुभ गति नहिं लहे, इह भाषी भगवान।
जातें शुभ कारज करो, जो चाहो कल्यान॥ 59 ॥

॥ सोरठा ॥

चारुदत्त युत खल, ले भेरुण्ड पहुँचत भयो।
रतनद्वीप तत्काल, रतनचूल परवत जहां॥ 60 ॥

लगो विदारन सोय, चारुदत्त निकसो तबै।
मागो खग इस जाये, चित्त में डर बहु धारिके॥ 61 ॥

॥ दोहा ॥

पुन्यवान जन जगत में, लहे सुख अधिकाय।
दुख दाता दुरजन जु हैं, हितकारी हो जाये॥ 62 ॥

॥ पायता ॥

तिस भूभृत सीस खरे हैं, आताप जोग धरे हैं।
ऐसे मुनि दीन दयालं, लख चारुदत्त तिह हालं॥ 63 ॥

तिनके चरनो ढिग आयो, बहु विधिते सीस नवायो।
मुनि पूरन जो सु कीने, वच चये महा हित भीने॥ 64 ॥

हे चारुदत्त गुण मण्डित, तेरे हैं कुशल अखण्डित।
तिन वच सुन हर्ष सुधारो, फिर चारुदत्त उच्चारो॥ 65 ॥

हे मुनि मैं दास तुम्हारो, मोकू किस ठौर निहारो।
तब कहत भये सुनी ज्ञानी, तुम सुनो चतुर मम वानी॥ 66 ॥

मैं अमित खगेश्वर नामा, विजियारध पै मम धामा।
इक दिन चित हर्ष उपायो, चंपानगरी ढिंग आयो॥ 67॥
शोभायुत कदली कानन, तिस लखकर फूलो आनन।
संग नार वसन्तसिरी थी, ताजुत वां केल करीथी॥ 68॥
तहां धूमसिंह खग आयो, मो तिय लखि चित्त लुभायो।
अपनी विद्या परकाशी, मोहि कील दियो दुखरासी॥ 69॥
मेरी भामा हरळई जबही, गयो अंबर माहीं तब ही।
तब ही मम पुन्य वसाये, तुम क्रीडा को तहँ आये॥ 70॥

॥ दोहा॥

मैंने तुझको देखकर, करी समस्या येह।
त्रियगुटिका मम पास हैं, ताको तू अब लेह॥ 71॥
पीस लगा मम तन विषय, तो छूटूं तत्काल।
सो तुम सबही विधि करी, हे सुन्दर गुणमाल॥ 72॥

॥ चौपाई॥

तब ही शल्य निकस मम गई, सब शरीर में साता भई।
जैसे गुरु की गिरा महान, सुनते असत तनी है हान॥ 73॥
फिर मैं अष्टापद गिर जाय, धूमसिंहते जुद्ध कराय।
अपनी तिय लायो छुड़वाय, फिर तुझपै आयो हरषाय॥ 74॥
मैं तुझ थुतकर कही जु मित्त, वर मांगो जो चाहो चित्त।
तुमने कहि कछु मांगूं नाहिं, सुखी भयो तुम दर्शन पाहि॥ 75॥
सत्पुरुषन की है यह वान, कर उपकार न मांगे दान।
तिस पीछे मैं गयो तुरन्त, अपने धाम विषै हरषंत॥ 76॥

दक्षण श्रेणी में शुभ ठाम, शिव मंदिर नगरी अभिराम।
तामें राज कियो मैं वीर, बहुत दिनन तक साहस धीर॥ 77॥

फिर मेरे उपजी यह चित्त, है सब ही संसार अनित्त।
तब निज सुत लीने बुलवाय, नाम सिंह जसग्रीव वराय॥ 78॥

दोनों को देकर सब राज, मैं आयो वन में तप काज।
जो संसार उतारो पार, ऐसी जिनवर दीक्षा धार॥ 79॥

तप बल पाई चारनऋद्धि, गगन गामिनी जो परसिद्ध।
अब तिष्ठूं इस परवत बीच, ध्यान धार नाशों अघ कीच॥ 80॥

॥ दोहा॥

इह वृतांत सुन सेठ सुत, ह्वै खुशाल धीमान।
बहु थुति मुनिवर की करी, तिष्टो ताही थान॥ 81॥

ताही छिन मुनिसुत जुगम, आये वन्दन हेत।
चारुदत्त की सब कथा, तिनते कह जगसेत॥ 82॥

॥ काव्य॥

अरु ताही छिन मांहिं एक चरसुर तहं आयो।
चारुदत्त के चरन कमल को शीश नवायो॥
सेठ पुत्र तब कही सुनो चरसुर गुनधारी।
नमन कियो मोहि आय कहौ यह कौन बिचारी॥ 83॥

विद्यमान गुरु पास होत हम कौनहि लायक।
तब चतुरोत्तम देव कहे सुनिये मुझ वायक॥
मोको बकरो जान हुतो परवत पै स्वामी।
रुद्रदत्त ने प्राण हने मैं दुख तहँ पामी॥ 84॥

तुम दीनों नवकार मंत्र सन्यास करायो।
ता प्रभाव कर प्रथम स्वर्ग में सुरपद पायो॥
इस कारनते आन चरन मैं बन्दे थारे।
शुभ मारग दरशाय दियो तुम गुरु हमारे॥ 85॥

ऐसे कहकर त्रिदश धरम अनुराग धार चित।
वस्त्राभूषन लाय चारुदत्त को पूजो नित॥
फेर नमन कर स्वर्ग गयो वह तिसही बारी।
सुर असुरन करि पूज होय जे पर उपकारी॥ 86॥

॥ दोहा॥

तिस पीछे वे मुनि तनुज, गुरु को सीस नवाय।
वनिक पुत्र के संग ले, चम्पा नगरी आय॥ 87॥

रत्नादिक बहु विधि दिये, चारुदत्त को सार।
नमस्कार करके तबै, गये सु निज आगार॥ 88॥

॥ चौपाई॥

जे प्रानी हैं पुन्य निधान। तिनको दुर्लभ कुछ नहीं जान॥
सब ही है सुल्लभ सुखदाय। तातें धरम करो अधिकाय॥ 89॥

चार प्रकार दान नित करो। श्री जिनपूजन में चित धरो॥
बरत शील कल्याण निमित्त बुद्धिमान मन धारें नित्त॥ 90॥

भान सेठ शुभ जाको तात। भली सुभद्रा ताकी मात॥
तिनके सुत को आवत जान। भये खुशी पुरजन अधिकान॥ 91॥

चारुदत्त निज पुन्य बसाय। भोगे भोग महा सुखदाय॥
श्रीजिन भाषित धर्म अराधि। कियो विचार अब तजो उपाधि॥ 92॥

सुन्दर नामा सुत बुध धार। ताको निज पद दे तिहवार॥
आप धरी दीक्षा तत्काल। करें सन्यास मरण गुणमाल॥ 93॥

शल्य रहित ह्वै मन वच काय। स्वर्गलोक में बहु रिध पाय॥
नानाविधि के तहँ शुभ भोग। भोगत भये पंचेन्द्री जोग॥ 94॥

मेरु सुदर्शन आदिक धाम। तहँ यात्रा यह करे ललाम॥
अरु तीर्थंकर देव महान। समोशरनजुत ज्ञान निधान॥ 95॥

तिनकी वानी सुधा समान। ताको यह सुर करे सुपान॥
इत्यादिक ह्वै धर्म सुरक्त। सुखतें तिष्टे जिनवर भक्त॥ 96॥

॥ सवैया इकतीसा॥

भागवत धरम सार संतजन हिये धार,
ताको धरो बार बार हितकारी जानके।
देव इन्द्र चन्द्र नागेन्द्र खगधीश नर,
सेवें इस ही को सब भक्ति हिये ठानके॥
जहा जो पवित्र येन स्वर्ग मोक्ष सुख देह,
याहीसों करो सनेह सर्म गेह मानके।
सोई धर्म नित प्रति मंगल करो सदीव,
ब्रह्म नेमीदत्त कही कथा श्रम भानके॥ 98॥

॥ दोहा॥

चारुदत्त वर सेठ की, कही कथा इह सार।
भव्य जीव वांचो सुनो, करो सु पर उपकार॥ 99॥